पहला मालिक

तथा अन्य कहानियां

हिन्दी कहानी में पिछले कुछ बरसों से विषय, शैली एवं शिल्प सभी दृष्टियों से निःसन्देह असाधारण गतिशीलता आई है, किन्तु साथ ही कहानी की भावना और कहानी के रूप को समझे बिना कहानी के बारे में अनेक चर्चाएं चल पड़ी हैं। कई कहानीकार तो शिल्प को संवारने में इतने जुट गए हैं कि कहानी की 'मूल बात' दबकर रह गई है।

किन्तु श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार इसके अपवाद हैं। उनके सामने कथ्य ही प्रमुख रहा है और उसीकी अभिव्यक्ति में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है।

इस संग्रह में उनकी पन्द्रह कहानियां हैं—सभी कला की दृष्टि से परिमार्जित। इत्तिफाक से इसमें उनकी सबसे पहली कहानी भी है और सबसे ताजी कहानी भी। इस प्रकार इस संकलन में दी हुई कहानियों में छत्तीस बरस का अन्तर है, यद्यपि अधिक संख्या उनकी नई कहानियों की ही है।

कहानी के पाठक के लिए यह महत्त्व की बात है। भूमिका में लेखक ने जो व्यक्तिगत प्रतिक्रिया दी है, और 'मैं कहानी कैसे लिखता हूं'—इसपर जो कुछ लिखा है, निस्सन्देह उससे पाठकों को बहुत प्रेरणा मिलेगी। हमारा विश्वास है, उक्त संग्रह कहानी के पाठकों को रुचेगा और इसके माध्यम से वे लेखक की कला का परिचय पा सकेंगे।
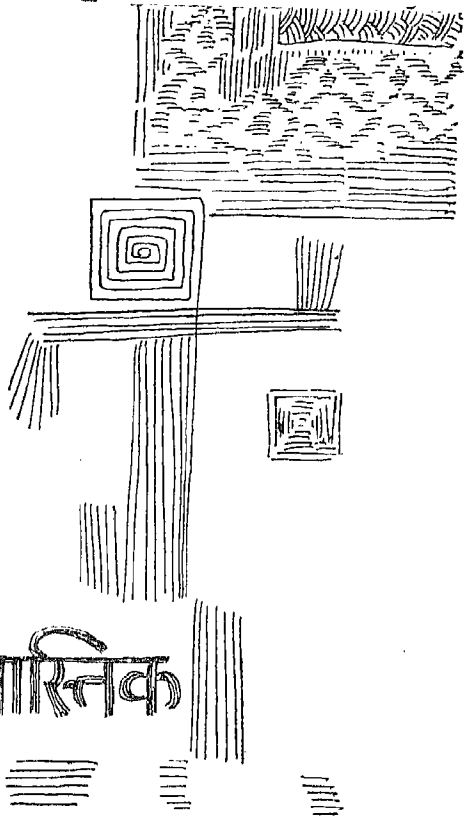
पहला नास्तिक

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली

मूल्य	:	तीन रुपये
प्रथम संस्करण	:	जनवरी, १९६१
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	:	युगान्तर प्रेस, दिल्ली

भूमिका

कहानी की परिभाषा और कहानी के रूप के सम्बन्ध में अपनी धारणाएं मैं 'तीन दिन' और 'वापसी' नामक पिछले दो कहानी-संग्रहों की भूमिकाओं में लिख चुका हूं। इस भूमिका में मैं संक्षेप से कहानी के सम्बन्ध की व्यक्तिगत अनुभूतियां लिखना चाहूंगा। पर उससे पहले कहानी-सम्बन्धी एक-आध अन्य पहलुओं का निर्देश करना भी मैं आवश्यक समझता हूं।

साहित्य के सभी माध्यमों में कहानी सबसे अधिक विश्वजनीन है। यहां तक कि उपन्यास से भी अधिक। कहानी की टेकनीक, कहानी की पहुंच, कहानी की परख और कहानी की अपील—संसार-भर की सभी भाषाओं में अन्य सभी साहित्यिक माध्यमों की अपेक्षा अधिक एकसमान है। इसके मुख्यतः तीन कारण हैं:

पहला तो यह कि वर्तमान कहानी एक अपेक्षाकृत बहुत नया साहित्यिक माध्यम है। यों कथा-किस्सों का इतिहास लगभग उतना ही पुराना है, जितना मानव-जाति का इतिहास। पर वर्तमान कहानी का, जिसे अंग्रेजी में 'शार्ट स्टोरी' कहते हैं, विकास हुए अभी लगभग एक सदी ही बीती है। जब कहानी नामक इस नये साहित्यिक माध्यम का विकास हुआ, आवागमन की सुविधाओं के कारण संसार सिकुड़कर छोटा हो गया था और संसार के विभिन्न देश एक-दूसरे से अधिक परिचित हो गए थे। इससे इस नये साहित्यिक माध्यम में विश्वजनीनता आ गई।

दूसरा कारण यह है कि कहानी के वर्तमान रूप में हुए विकास में

कितने ही देशों ने एकसाथ भाग लिया। यों तो साहित्य के अन्य माध्यमों के विकास में भी सभी देश अन्य देशों के साहित्य से बहुत कुछ सीखते हैं, पर कहानी का तो वर्तमान रूप ही किसी एक देश में निर्धारित नहीं हुआ। यह रूप निर्धारित करने में फ्रांस, रूस, इंगलैण्ड और अमेरिका इन चार देशों का विशेषतः प्रमुख भाग है। बाद में अन्य देशों की महत्त्वपूर्ण देन भी इस साहित्यिक माध्यम को प्राप्त हुई।

कहानी की विश्वजनीनता का तीसरा कारण उसका उद्देश्य-प्रधान संक्षिप्त रूप है। एक कहानी में केवल एक ही केन्द्रीय भाव रहता है। सम्पूर्ण कहानी में एक भी ऐसा वाक्य तक सहन नहीं किया जा सकता, जो उस केन्द्रीय भाव के स्पष्टीकरण में सीधे तौर से सहायक न हो। इस कारण कहानी देशीय या क्षेत्रीय प्रभावों की झलक-भर देती है, और इस तरह वह लम्बे क्षेत्रीय वर्णनों से दूर के अजान पाठक को 'बोर' कर देने से बची रहती है। क्षेत्रीय परिस्थितियों का यत्किंचित् परिचय प्रायः आकर्षक ही सिद्ध होता है, पर उनका विस्तार उबानेवाला भी हो सकता है। और जहां तक कहानी के केन्द्रीय भाव का सम्बन्ध है, उसकी अपील सार्वभौम होना स्वाभाविक है, क्योंकि मानव सभी जगह एकसमान है। बल्कि बहुत बार केन्द्रीय भाव की यही सार्वभौमिकता कहानी की श्रेष्ठता की कसौटी सिद्ध होती है।

संसार के प्राचीन साहित्य में कथानक की महत्ता शायद आज की अपेक्षा भी अधिक थी, क्योंकि उन दिनों बिना कथानक के शायद कुछ भी नहीं कहा जाता था। फिर किस्सों-कथाओं को न उस युग में और न बाद में ही साहित्यिक सम्मान का स्थान प्राप्त हुआ। पर वर्तमान कहानी को विश्व-साहित्य में यथेष्ट सम्मान का स्थान प्राप्त है और उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में कहानी सम्भवतः सबसे अधिक लोकप्रिय और शक्तिशाली साहित्यिक माध्यम बनी रही है।

पर दूसरे विश्वयुद्ध ने जहां संसार-भर को सम्भवतः सभी पहलुओं से काफी अंशों में बदल दिया, वहां साहित्य के मूल्य भी बहुत दूर तक

प्रभावित किए। युद्ध के दिनों में घटनाएं बहुत तेजी से भाग रही थीं और मानव-जाति के सभी मूल्य और सभी उपलब्धियां उन दिनों जैसे कसौटी पर कसी जा रही थीं और मानव उनमें बुरी तरह फेल हो रहा था। इन परिस्थितियों में चिन्तन और मनन ही सम्भव नहीं होता, तो विचार-दोहन कहां से हो? परिणाम यह हुआ था कि कुछ वर्षों के लिए संसार-भर की सभी भाषाओं के साहित्यिक सृजन में स्पष्ट गत्यवरोध आ गया था। महायुद्ध के कुछ समय के बाद साहित्य की यह धारा फिर से शक्ति-शाली रूप में प्रवाहित तो होने लगी, पर उसके पुराने मूल्य बदल गए। साहित्य का ध्येय, साहित्य के मूल्य, साहित्य का क्षेत्र, साहित्य की विधा तथा साहित्य का शिल्प—ये सब कम-अधिक बदले। साहित्य के सभी माध्यमों में कहानी नामक यह माध्यम सबसे अधिक स्पष्ट और सबसे अधिक नपा-तुला है, इससे उक्त परिवर्तन के उलझानेवाले प्रभावों से तो वह बची रही, फिर भी उक्त परिवर्तनों का प्रभाव तो उसपर पड़ा ही। वर्तमान एब्स्ट्रैक्ट आर्ट की तरह वह वस्तु-निरपेक्ष (नान-रैप्रेज़े-न्टेशनल) तो नहीं बन पाई, पर नये मूल्यों से अनुप्रेरित और प्रभावित वह अवश्य हुई। यह स्मरण रहे कि उक्त परिवर्तन की दशा में भी कहानी की विश्वजनीनता निरन्तर कायम रही।

अभी मैं निश्चित रूप से तो नहीं कह सकता, पर मेरा ख्याल है कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विश्व-कहानी की धारा में यथेष्ट प्रवाह आ जाने पर भी आज कहानी विश्व-साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय और शक्ति-शाली माध्यम नहीं रहा। यों जहां तक प्रभाव और मान का प्रश्न है, कहानी कभी भी मूर्धन्य स्थान पर नहीं पहुंची थी। बहुत समय तक साहित्य में कवियों को सबसे अधिक महत्ता दी जाती रही। उसके बाद नाटकों का सम्मान और प्रभाव मूर्धन्य हो गया। अठारहवीं सदी से उपन्यासों का स्थान इस दृष्टि से सर्वोपरि रहा है। दूसरे महायुद्ध तक इस दृष्टि से उपन्यास का स्थान निस्सन्देह सर्वप्रथम रहा। नोबल पुरस्कार सबसे अधिक उपन्यासों पर ही दिया गया है।

पर एक दृष्टि से पिछले सौ वर्षों में विश्व-साहित्य में कहानी सबसे अधिक लोकप्रिय रही। उपन्यास फुरसत से पढ़ने की चीज है, पर कहानी एक तरह से हर वक्त का साथी बन गई थी। सामयिक साहित्य (पिरिऑडिकल्स) में तो कहानी सबसे अधिक लोकप्रिय थी ही। साधारणतः किसी भी साहित्यिक पत्र-पत्रिका के लिए कहानी का महत्त्व बहुत समय से सबसे अधिक है।

दूसरे विश्वयुद्ध ने जब मानवीय मूल्यों में असाधारण परिवर्तन कर दिया तो साहित्य में गम्भीर विचारों की महत्ता पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गई। जैसे इस गम्भीरता को समतुलित करने के लिए दूसरी ओर व्यंग्य और हास्य का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है। जार्ज बर्नर्ड शा चुभते हुए विचारोत्तेजक व्यंग्य का मार्ग दिखा ही गए हैं। संसार की आज की परिस्थितियों में वह ठीक और उपयुक्त माध्यम सिद्ध हो रहा है। एक ओर गम्भीर विचार और दूसरी ओर व्यंग्य और हास्य। युद्धोत्तर विश्व के साहित्य में इन साहित्यिक विधाओं की महत्ता बढ़ रही है।

तथापि कहानी अभी तक अपनी जगह से उखड़ी नहीं है। विश्व के प्रतिभाशाली कहानी-लेखकों ने कहानी की शैली और शिल्प में कितने ही नये-नये प्रयोग निरन्तर किए हैं। स्केचों के बाद रिपोर्ताज के ढंग का आविष्कार तो किया ही गया था। दूसरे महायुद्ध के बाद मर्यादा-अमर्यादा के पुराने दृष्टिकोण की नितान्त उपेक्षा तथा अबाध स्पष्टता से भरे चित्रण का तरीका भी अख्तियार किया गया। कुछ प्रसिद्ध इटैलियन कहानी-लेखक अपनी कहानियों में बौद्धिकता का धरातल कायम रखते हुए, सफल व्यंग्य की शैली में वासना के एकदम नग्न चित्रण तक करने लगे। गंभीर कहानी में रति-कार्य की प्रत्येक क्रिया का विशद चित्रण पहले शायद कभी सहन न किया जाता। सम्भवतः फ्रांस के सार्त्र ने इस सम्बन्ध में मार्ग-प्रदर्शन किया था। 'अस्तित्ववाद' के प्रतिष्ठापक सार्त्र, जो कितने ही नये कहानी के आदर्श होते हुए भी मेरी राय से सर्वोच्च कोटि के कहानी

लेखक नहीं हैं।

हिन्दी कहानी में भी पिछले पांच-छः वर्षों में असाधारण गतिशीलता देखने में आई है। पूर्वोक्त विश्वव्यापी साहित्यिक गत्यवरोध से मुक्ति पाकर हिन्दी कहानी की धारा जैसे पहले की अपेक्षा भी अधिक विस्तृत और अधिक उन्मुक्त रूप में बहने लगी है। आज हिन्दी में कहानी-लेखकों की जितनी बड़ी संख्या है, उतनी आज से पहले कभी नहीं थी। विषय, शैली और शिल्प की दृष्टि से भी हिन्दी कहानी आज निस्सन्देह प्रगति कर रही है और उसमें असाधारण विभिन्नता भी आ गई है। यह तो मैं नहीं कहूंगा कि हिन्दी कहानी का स्तर आज पहले की अपेक्षा अधिक ऊंचा हो गया है, क्योंकि प्रेमचन्दलिखित 'कफन' के स्तर की कहानी हिन्दी में शायद अभी तक दूसरी नहीं लिखी गई। फिर भी हिन्दी कहानी का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाने का तथ्य तथा हिन्दी कहानी में असाधारण गतिशीलता दिखाई देने की बात कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

यहां तक तो ठीक। पर परिस्थिति का दूसरा पहलू भी है। कहानी की भावना और कहानी के रूप को समझे बिना हमारे यहां कहानी-सम्बन्धी कितनी ही चर्चाएं चली हैं। किसी मनचले ने तो 'शहराती' कहानी और 'देहाती' कहानी नामक कहानी के दो भेद भी हिन्दी में चला दिए थे। हिन्दी में प्रचलित नई कविता का प्रभाव हिन्दी कहानी पर भी पड़ा है और कुछ लोग नई कहानी का अभिप्राय 'नई लिखी गई कहानी' नहीं, अपितु 'नये ढंग की कहानी' समझने लगे हैं, जैसे वह अब तक की कहानी से भिन्न कोई नया साहित्यिक माध्यम हो। हमारे कुछ कहानी-लेखक इससे भी आगे गए हैं। वे अपने को हिन्दी कहानी की शानदार परम्परा (हिन्दी कहानी का विकास सचमुच बहुत प्रशंसनीय गति और शानदार ढंग से हुआ है) की एक कड़ी न समझकर यह दावा करने लगे हैं कि 'हिन्दी कहानी में अब तक जो छिछलापन, सतही चित्रण और झूठे अनजाने मूल्यों का घपला था' उससे वे उसे नजात दे रहे हैं। लोगों ने यहां तक

भी दावे किए हैं कि अपनी कहानियों के 'बिम्ब-विधान 'और 'नये शिल्प-प्रयोगों' द्वारा उन्होंने न केवल 'नई-नई भूमियां' खोज निकाली हैं, अपितु अपनी 'उपलब्धियों' द्वारा वे विश्व-कहानी को भी एक नया मार्ग दिखा रहे हैं। अविनय और अवज्ञा की भावना को बढ़ानेवाली इस नारेबाज़ी को धड़ेबन्दी द्वारा जब उकसाने का प्रयत्न किया जाता है, तो वह और भी अधिक अरुचिकर हो उठता है।

मैं जानता हूं और मानता हूं कि साहित्य में इस तरह की नारेबाज़ी और धांधली बहुत समय तक नहीं चल सकेगी। पर यह भी स्पष्ट है कि कम से कम कुछ समय के लिए उक्त नारेबाज़ी कुछ नये लेखकों तथा पाठकों के मस्तिष्क में न केवल कहानी के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाएं उत्पन्न करने में सफल हो गई है, अपितु कहानी और कहानी-लेखकों के सम्बन्ध में उल्टी-सीधी भेदक सीमाएं भी उत्पन्न कर रही है। हिन्दी में आज ऐसे पत्र भी हैं, जो कहानी-सम्बन्धी सम्पूर्ण चर्चा इन्हीं प्रभावों के अन्तर्गत करते हैं, जैसे १९५० से पहले की तथा ४० वर्ष से ऊपर की आयु के लेखकों की कहानियां कहानी ही नहीं हैं। नये लेखकों को मेरी सलाह है कि अगर वे इस तरह की धड़ेबन्दी से बचे रहकर, अच्छी कहानी क्या है, यह समझने का प्रयत्न करेंगे, तो इससे उनका अपना भविष्य उज्ज्वल बनेगा और वे हिन्दी कहानी को समुन्नत करने में अपना योगदान दे सकेंगे। गाल्सवर्दी के शब्दों में "यदि आपके पास कहने को कोई मूल्यवान वस्तु है तो उसे चाहे जिस रूप में लिख डालिए, आपके पाठक उसकी कदर करेंगे। यदि आपके पास कहने को कुछ भी नहीं है तो चाहे आप 'शिल्प-विधान' और 'बिम्ब-विधान' पर जितना बल दीजिए, आप मूल्यवान साहित्य की सृष्टि नहीं कर पाएंगे।"

वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि हमारे साहित्यकारों का बौद्धिक धरातल ऊंचा बने और उन्हें यथेष्ट सुविधाएं प्राप्त हों ताकि वे मानव-मन की, मानव-सम्बन्धों की, अपने समाज की तथा विश्व की समस्याओं को गहराई से समझ सकें। जब तक ऐसा नहीं होगा, इस

तरह की बेकार की नारेबाज़ियां उठा ही करेंगी। पाठक सचेत रहें।

इस संग्रह में मेरी पन्द्रह कहानियां हैं। यह शायद इत्तिफाक की बात है कि इस संग्रह में मेरी सबसे प्रथम कहानी भी है और साथ ही मेरी सबसे ताज़ी कहानी भी। मेरी प्रथम कहानी 'मेरे मास्टर साहब' है, जिसे मैंने सन् १९२४ में अपने छात्रजीवन में लिखा था, जब मेरी आयु केवल १८ बरस की थी। अभी तक यह कहानी मैंने किसी संग्रह में नहीं दी थी। पर अब बहुत समय के बाद जब मैंने इसे पढ़ा तो मुझे यह पसन्द आई और आज मैं इसे एक तरह से पहली बार पाठकों के सम्मुख रख रहा हूं। मेरी सबसे ताज़ी कहानी 'पहला नास्तिक' है, जिसे मैंने कुछ ही सप्ताह पूर्व लिखा है। इस तरह इस संग्रह में दी गई कहानियों में छत्तीस बरस का अन्तर है, यद्यपि अधिक संख्या मेरी नई कहानियों की ही है।

ये दो प्रश्न प्रायः मुझसे भी पूछे गए हैं कि मैं अपनी कहानियों की प्रेरणा कहां से लेता हूं और लिखने के सम्बन्ध में मेरी आदतें कैसी हैं। ये प्रश्न निरर्थक भी नहीं हैं, क्योंकि विभिन्न लेखकों के प्रेरणास्रोत, लिखने की शैली और आदतें भिन्न-भिन्न हैं।

इस संग्रह की दो कहानियां मैंने अपनी विद्यार्थी-अवस्था में लिखी थीं। 'मेरे मास्टर साहब', जिसका ज़िक्र मैं ऊपर कर चुका हूं, और 'ताड़ का पत्ता'। हमारे निरुक्त के आचार्य ने एक बार हमारी श्रेणी में व्याख्यान देते हुए सुनाया कि भारत के कितने ही प्राचीन ब्राह्मणों ने इस भय से कि उनके पास सुरक्षित प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ म्लेच्छ विदेशियों के हाथ न पड़ जाएं, उन्हें यज्ञकुण्ड में उसी तरह भस्म कर दिया था, जिस तरह दशभुजा दुर्गा की मूर्ति पूजा के बाद विसर्जित कर दी जाती है। उसीसे प्रेरणा लेकर मैंने 'ताड़ का पत्ता' शीर्षक कहानी लिखी थी। तब तक प्रतिमा-विसर्जन का कवित्वपूर्ण दृश्य मैंने अपनी आंखों से नहीं देखा था। यदि वह दृश्य मैंने देखा होता तो सम्भव है कि मेरी उक्त

कहानी का चरम बिन्दु किसी और रूप में लिखा गया होता। यह भी सम्भव है कि तब पंतलु के मनस्तल पर छाए हुए पीढ़ियों के बोझिल संस्कारों का अधिक सही चित्रण उक्त कहानी में किया गया होता। कालेज के विद्यार्थी-जीवन में लगभग दस बरसों के बाद मुझे अपने बचपन के एक सरलहृदय वृद्ध मास्टर जी से पुनः मिलने का अवसर मिला, जो अभी तक तीसरी श्रेणी को ही पढ़ा रहे थे। उनसे मिलने के बाद मेरे मस्तिष्क में जो कल्पना-चित्र खिंचा, वह 'मेरे मास्टर साहब' में चित्रित है।

जब मैं अपनी कहानियों की पृष्ठभूमि की बात करने बैठा हूं, तो यह जरूरी नहीं कि अपने को इस संग्रह में दी गई कहानियों तक ही सीमित रखूं।

एक बार मैं अकेला कुछ घण्टों के लिए लाहौर से अमृतसर चला गया था। वहां दरबार साहब में जाकर मैं ऊपर की गैलरी में बैठे दर्शकों में सम्मिलित हो गया। ग्रन्थ साहब के सम्मुख श्रद्धालुओं की भीड़ थी। एक ओर बैठे रागी मधुर स्वर में गा रहे थे—'हम निरगुन तुम तत्ता-ग्यानी' (तत्त्वज्ञानी)। दरबार में सभी आयुओं के भक्त—स्त्री-पुरुष दोनों—आते थे और श्रद्धा से ग्रन्थ साहब के सम्मुख सिर झुकाकर कुछ भेंट प्रस्तुत करते थे और प्रसाद लेकर बैठ जाते थे। मैं काफी देर तक यह दृश्य देखता रहा। मुझे ख्याल आया कि यदि कोई भयंकर सिक्ख अपराधी (सिक्ख इसलिए कि उसके हृदय में दरबार साहब और गुरुग्रन्थ के लिए श्रद्धा-भावना अवश्य होगी) यहां आ जाए तो उसके हृदय पर क्या प्रति-क्रिया होगी। मन्दिर से उठकर मैं सीधा लाहौर वापस चला आया और उसी दिन मैंने 'सिकन्दर डाकू' शीर्षक कहानी लिखी, जिसमें गान की उक्त पंक्ति बार-बार आती है।

प्रेरणा मिलने पर तत्काल कहानी लिखने का शायद मात्र यही एक उदाहरण है। प्रायः कोई भाव सूझ जाने पर मैं केवल शीर्षक-भर अपनी डायरी में लिख लेता हूं, अधिक से अधिक एक पंक्ति। उसके आधार पर

कहानी लिखने में कभी-कभी तो बरसों लग जाते हैं। १९६० की अपनी डायरी में मैंने पिछली डायरी से इस तरह के सत्ताईस भाव-शीर्षक दर्ज किए थे। इनके अतिरिक्त इस वर्ष चार नये भाव-शीर्षक मैंने इस डायरी में दर्ज किए। पिछले वर्ष पांच महीनों में इन इकतीस में से केवल तीन भाव-शीर्षकों के आधार पर मैंने तीन कहानियां लिखी हैं। शेष अट्ठाईस अभी उसी तरह दर्ज हैं। कल रात उनमें से एक और शीर्षक मैंने अपने लिखने की फाइल पर शीर्षक के रूप में लिखा है। देखूं, कब तक यह नई कहानी पूरी करता हूं। पिछले पांच महीनों में मैंने जो कहानियां लिखी हैं, उनके शीर्षक हैं—'मैं जरूर बचा लूंगा,' 'डाक्टर की डायरी' और 'पहला नास्तिक'। ये तीनों कहानियां इस संग्रह में हैं।

मेरी कल्पना में प्रायः सबसे पूर्व कहानी का मूलभाव आता है, कथानक नहीं। जब मैं कहानी लिखने बैठता हूं, तब भी कोई स्पष्ट कथानक मेरे सम्मुख नहीं होता। हां, कहानी का केन्द्रीय भाव (सेण्ट्रल थीम) अवश्य स्पष्ट रूप से मेरे सम्मुख रहता है। कहानी लिखते हुए उक्त भाव की अभिव्यक्ति के लिए मैं कथानक का निर्माण करता चला जाता हूं। हां, कभी-कभी कोई ऐसा कथानक भी मुझे अचानक सूझ जाता है, जिसमें केन्द्रीय भाव की प्राण-प्रतिष्ठा मजे में हो सकती है। कुछ पढ़ते हुए अथवा बातचीत में सुनी-सुनाई घटनाओं में इस तरह के कथानक कई बार सूझते हैं, पर उनमें भी पूरी तरह स्पष्ट कथानक कभी नहीं रहता। वह तो लिखते हुए ही सूझता है। इस संग्रह की केवल पांच कहानियां ही इस ढंग की हैं। अधिकांश कहानियां कल्पना-प्रसूत हैं। जिस कहानी को मैं जितनी अधिक तन्मयता दे पाता हूं, उतना ही उसे लिखकर मुझे प्रसन्नता अनुभव होती है। जो आनन्द अपने लिए सन्तोषजनक एक कहानी लिखकर मुझे प्राप्त होता है, वह किसी अन्य कार्य से नहीं प्राप्त होता।

अपनी रचनाओं को मैं सोद्देश्य अवश्य बनाने का प्रयत्न करता हूं। मानव-मस्तिष्क और मानव-क्रियाकलाप जिन परिस्थितियों और शक्तियों से संचालित होता है, उनमें श्रेय और प्रेय दोनों श्रेणियां हैं। मैं अपनी

रचनाओं में श्रेय का आश्रय लेता हूं। प्रत्येक मनुष्य के चरित्र और स्वभाव में अच्छे और बुरे दोनों पहलू रहते हैं। मैं चाहता हूं कि मेरी रचनाओं से अच्छे पहलुओं को प्रेरणा मिले। भयंकर से भयंकर परिस्थितियों में भी प्रयत्न करने पर प्रकाश की किरण तलाश कर ली जा सकती है। मैं इसी किरण को तलाश करने का प्रयत्न करता हूं। देश-विभाजन के सम्बन्ध में मैंने जो कहानियां लिखी हैं, उनमें इसी बात का प्रयत्न किया है कि मानव-हृदय के उच्च पहलुओं को महत्त्व दिया जाए। मेरा विश्वास है कि जीवन की शक्ति मृत्यु की शक्ति से अधिक प्रबल है। जिस दिन ऐसा नहीं रहेगा, वही प्रलय का दिन होगा। यों इस बात को मैं किसी सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित नहीं करना चाहता। क्योंकि मैं जानता हूं कि दोनों पक्षों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है। यहां मैं केवल व्यक्तिगत रुचि का ज़िक्र कर रहा हूं। इससे अधिक कुछ भी नहीं।

लिखने का कार्य मैं प्रायः रात ही को करता हूं। एक तो उस समय किसी तरह की कोई बाधा या शोरगुल नहीं होता। दूसरा जब तक चाहे बैठकर मजे में लिखा जा सकता है। लिखते हुए पूरी एकाग्रता रखना मेरे लिए आवश्यक है, इससे ध्यान बंटाने वाली किसी भी तरह की कोई बाधा मैं उस समय पसन्द नहीं करता। मैं यह भी नहीं चाहता कि जिस कमरे में बैठकर मैं लिख रहा हूं, उस कमरे में कोई और व्यक्ति विद्यमान रहे। लिखते हुए गुनगुनाना या चुपचाप बैठकर सोचना—यह सब चलता है और मैं नहीं चाहता उस समय मेरा ध्यान कहीं भी बंटे। यहां तक कि मैं पूरी शान्ति चाहता हूं। यह शान्ति मुझे रात को मिलती है, जब घर के सब लोग सो जाते हैं और मैं लिखने बैठ जाता हूं। कभी-कभी बहुत तेज़ी से लिखता चला जाता हूं—कलम के लिए भावों को लिपिबद्ध कर सकना कठिन हो जाता है और कभी-कभी कलम हाथ में लिए मिनटों तक चुपचाप सोचता रहता हूं। जिस दिन लिखने का मूड होता था, पहले मैं गरम कॉफ़ी का एक प्याला ले लिया करता था, ताकि रात के

दो या तीन बजे तक नींद न आए। पर अब मैं वैसा नहीं करता। नींद आती है, तो लिखना छोड़कर सो जाता हूं।

जब मैं कहानी लिखने बैठता हूं तो जैसे कथानक को अपनी कल्पना के नेत्रों से घटित हुआ-सा देखता जाता हूं और लिखता जाता हूं। शायद इसी कारण मैं अपनी रचनाओं में वातावरण और प्रकृतिचित्रण को बहुत अधिक महत्त्व देता हूं, क्योंकि एक तरह से मैं उन्हें देख रहा होता हूं। शायद यही कारण है कि कहानी, नाटक आदि बोलकर लिखाने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। यद्यपि पिछले लगभग बीस बरसों से पत्र-व्यवहार और अनुवाद का कार्य मैं नियमित रूप से खूब मजे में अपने लघुलिपिक महोदय (स्टेनो) को लिखवाता हूं।

अपनी कितनी ही कहानियां मैंने एक ही बैठक में लिखी हैं। इसकी पृष्ठभूमि यह है कि जब तक बनता है, लिखने की बात मैं टालता चला जाता हूं। विद्यार्थी-जीवन में अपनी संस्था में मैं अपनी पहली कहानी से ही अपने यहां का अत्यन्त लोकप्रिय कहानीलेखक माना जाने लगा था। हमारे यहां तीन साहित्यिक संस्थाएं थीं, जिनके वार्षिक समारोहों में कुछ कहानियां भी पढ़ी जाती थीं। उक्त संस्थाओं के मन्त्री प्रायः मुझसे कहानी लिखने का अनुरोध करते थे। वायदा करके भी मैं टालता चला जाता था। आखिर समारोह से पहली रात वे मुझे मेरे कमरे में बन्द कर देते थे। यथेष्ट भोजन आदि मेरे कमरे में ही रख दिया जाता था। मेरा कमरा तभी खोला जाता था, जब मैं उन्हें बता दूं कि मैं कहानी पूर्ण कर चुका हूं। इससे एक बैठक में पूरी कहानी लिखने का मुझे जैसे कुछ अभ्यास भी हो गया था। पर अब वह बात नहीं है। अब प्रायः मैं अपनी एक कहानी तीन बैठकों में पूरी करता हूं। इन बैठकों में कई बार परस्पर काफी व्यवधान भी पड़ जाता है।

कहानी पूर्ण कर मैं उसमें आवश्यक सुधार करता हूं। पर वह सुधार ऐसा नहीं होता, जो कहानी को बहुत अधिक बदल दे। वह प्रायः चित्र-कला के अन्तिम स्पर्श (फ़िनिशिंग टच) से अधिक नहीं होता।

मेरा ख्याल है कि व्यक्तिगत बातों का प्रसंग बहुत लम्बा हो गया है। इस बीच मुझे इस तरह के बहुत-से पत्र मिले हैं, जिनमें ऐसे प्रश्न पूछे गए हैं। इसीसे अपने इस संग्रह की भूमिका में मैंने इतनी व्यक्तिगत बातें लिख दी हैं।

४ पटौदी हाउस,
४ दिसम्बर, १९६० } —*चन्द्रगुप्त विद्यालंकार*

सूची

मैं ज़रूर बचा लूंगा

डाक्टर राजेन्द्रलाल अपने नगर ही क्या प्रान्त-भर के सबसे बड़े डाक्टर थे। पर सारा नगर उनसे घृणा करता था। लोगों का विश्वास था कि उनके जैसा अर्थ-पिशाच और हृदयहीन व्यक्ति सम्पूर्ण नगर में दूसरा नहीं है। फिर भी उनके यहां बीमारों की भीड़ लगी रहती थी। लोग जानते थे कि डाक्टर राजेन्द्रलाल एक बार तो मरीज़ को यमराज के मुख से छीनकर वापस ला सकता है। इससे ज़रूरत पड़ने पर लोग अपनी सम्पूर्ण जमा-पूंजी एकत्र कर और स्त्रियां अपने आभूषण तक बेचकर उनके यहां जाती थीं, ताकि वे अपने प्रियजनों के प्राण बचा सकें। डाक्टर राजेन्द्रलाल की फीस बहुत ऊंची थी और वे पूरी फीस पहले ही वसूल कर लेते थे। घर पर जाने की फीस कई गुनी थी। मरीज़ों को देखने का समय भी निश्चित था। रात के समय किसीके घर जाना तो एक ओर रहा, अपने घर पर भी वे मरीज़ों को नहीं देखते थे, चाहे किसीकी जान ही क्यों न चली जाए। गाली दिए बिना तो अब वे बात ही न करते थे। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, किसीका भी लिहाज़ नहीं था।

पर डाक्टर राजेन्द्रलाल सदा से ऐसे नहीं थे। लोगों को खूब अच्छी तरह याद है कि सिर्फ तीन बरस पहले तक उनका व्यक्तित्व एकदम भिन्न प्रकार का था। तीन बरस पहले तक वे अपने नगर के सच्चे सेवक और गौरव थे। लोग तब जैसे उनकी पूजा किया करते थे। दिन-रात, किसी भी समय, मरीज़ उनके पास जा सकते थे। उनके हाथ में असाधारण यश था। जब वे किसी रोगी की परीक्षा करने लगते तो उनकी

मुद्रा बहुत गम्भीर हो जाती, उनका सम्पूर्ण ध्यान बीमार की ओर केन्द्रित हो जाता था। उस समय उनके सहायक डाक्टर भी उनसे बात करने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। यह प्रसिद्ध था कि ज्यों-ज्यों डाक्टर राजेन्द्रलाल रोगी की बीमारी समझते जाते, उनके चेहरे की कठोरता क्रमशः क्षीण पड़ती चली जाती। जिस अनुपात में यह कठोरता कम होती, उसी अनुपात से बीमार के लिए आशा बढ़ती जाती और जब डाक्टर साहब मुस्कराकर यह कह देते कि अच्छा काका, अब तेरा इलाज शुरू होगा, तो बीमार सहित घर के लोगों को यह पूरा विश्वास हो जाता कि अब बीमार ठीक होकर ही रहेगा, चाहे बीमारी कितनी ही असाध्य क्यों न हो। उस जमाने में भी उनकी आय बहुत बड़ी थी, शायद आज से भी अधिक, क्योंकि जो लोग उनसे जीवन प्राप्त करते, वे उन्हें जी खोलकर दक्षिणा देते थे। पर तब डाक्टर राजेन्द्रलाल लालची नहीं थे। गरीब रोगियों का वे मुफ्त इलाज करते थे और जरूरत पड़ने पर दवाई भी अपनी ओर से दिया करते थे। जनसाधारण उन दिनों उन्हें धन्वन्तरी का अवतार मानते थे।

ऐसा लोकप्रिय डाक्टर एकाएक इतना निर्दय, सहानुभूतिशून्य और अर्थ-पिशाच कैसे बन गया, यह लोगों के लिए एक आश्चर्यपूर्ण रहस्य था, पर जानकार लोग जानते हैं कि तीन वर्ष पूर्व डाक्टर राजेन्द्रलाल को कितना बड़ा धक्का लगा था।

डाक्टर राजेन्द्रलाल अपने दोनों बेटों से असन्तुष्ट थे, शायद इस कारण कि उनमें से एक भी उनकी सलाह मानकर डाक्टर नहीं बना था। बड़ा लड़का मैट्रिक पास करते ही उनसे यह वायदा करके इंग्लैंड चला गया था कि वह डाक्टर बनेगा। पर जब वह वापस आया तो पता चला कि हजरत चिकित्सा के डाक्टर न बनकर इतिहास के डाक्टर बने हैं और आजीविका के लिए वे बार-एट-ला भी बन आए हैं। दूसरा बेटा सचमुच निकम्मा निकला, हॉकी के एक अच्छे खिलाड़ी से अधिक वह कुछ नहीं बन पाया।

बेटों से निराश होकर डाक्टर राजेन्द्रलाल ने अपने बड़े पोते नरेन्द्र को एक तरह से गोद ले लिया था। बालक सचमुच होनहार था। डाक्टर साहब उसपर जान देते थे। क्रमशः नरेन्द्र के प्रति अपना वात्सल्य जागरित कर उन्हें जैसी किसी बात की कमी नहीं रही थी। उन्हें यह भी विश्वास था कि नरेन्द्र उन्हींके समान एक बड़ा डाक्टर बनेगा। नरेन्द्र की उम्र तब सोलह बरस की थी।

तीन बरस पूर्व, सर्दियों के एक प्रातःकाल, उन्हें किसी मरीज़ को देखने अस्सी मील दूर के एक शहर में जाना पड़ा था। उस दिन रविवार था, इससे वे नरेन्द्र को भी अपने साथ ले जाना चाहते थे। पर नरेन्द्र ने अपने बिस्तर में लेटे-लेटे ही उनसे कह दिया था कि उसे आज कालेज का कुछ जरूरी काम है। डाक्टर साहब अकेले चले गए थे। जिस मरीज़ को वे देखने गए थे, उसकी बीमारी संगीन थी। उसके घरवाले चाहते थे कि डाक्टर साहब कम से कम एक रात वहां ठहरें। वे इसके लिए पूरी फीस भी देने को तैयार थे। पर न जाने क्यों, डाक्टर साहब एक तरह की अननुभूत बेचैनी अनुभव कर रहे थे। जब वे घर से चले थे तो उन्होंने पाया था कि बिस्तर में लेटे हुए नरेन्द्र की आंखों में वह आह्लाद-पूर्ण चमक नहीं है, जिसे देखने के सदा से वे अभ्यस्त हैं। सारा दिन वे नरेन्द्र की ही बात सोचते रहे थे। इससे उन्होंने बीमार के घरवालों का अनुरोध भी नहीं माना और मध्याह्न समाप्त होते न होते वापस लौट चले।

डाक्टर साहब घर वापस आए तो अभी सूर्यास्त भी नहीं हुआ था। वे अपनी कोठी में पहुंचे तो पहला सवाल उन्होंने नरेन्द्र के ही सम्बन्ध में किया था। उन्हें बताया गया था कि नरेन्द्र अपने कमरे में है और यों तो सब ठीक है, पर उसने दुपहर का भोजन नहीं किया। डाक्टर साहब की पत्नी ने उन्हें चाय पी लेने को कहा और यह भी कहा कि नरेन्द्र भी यहां आकर चाय पीएगा, पर डाक्टर साहब एक क्षण की भी प्रतीक्षा किए बिना नरेन्द्र के कमरे में चले गए थे। वहां पहुंचकर उन्होंने आवाज़ दी

थी, 'बेटा नरेन्द्र।'

'जी पिताजी !' उत्तर सुनकर भी डाक्टर राजेन्द्रलाल आश्वस्त नहीं हुए थे। वे दरवाज़ा खोलकर शीघ्रता से भीतर चले गए थे। वहां उन्होंने देखा था कि नरेन्द्र अपने बिस्तर से उठने की चेष्टा करते हुए जैसे ज़बरदस्ती मुस्करा रहा है।

'क्या हुआ, बेटा ?' कहकर डाक्टर साहब लपककर उसके पास पहुंचे थे। अनायास ही उनका एक हाथ नरेन्द्र के माथे पर पहुंचा था और दूसरा उसकी नब्ज़ पर और डाक्टर साहब ने पाया था कि नरेन्द्र को तेज़ बुखार है।

धनवन्तरी का अवतार माने जाने वाले डाक्टर राजेन्द्रलाल एकाएक घबरा उठे थे। अपने जीवन में उन्हें पहली बार घबराहट अनुभव हुई थी। अनुभवी और दक्ष डाक्टर ने देख लिया था कि नरेन्द्र का बुखार तेज़ी से बढ़ रहा है और यह भी कि वह मामूली बुखार नहीं है।

उसके बाद उस सारी रात वे जागते रहे थे, उस सारी रात वे चिन्तन करते रहे थे, उस सारी रात वे नरेन्द्र का इलाज करते रहे थे और नगरभर के अच्छे डाक्टरों से नरेन्द्र की बीमारी के निदान का प्रयास भी करते रहे थे। नरेन्द्र न चीखा था और न चिल्लाया था। उसका बुखार तेज़ी से बढ़ता जा रहा था। हर बीस मिनटों में थर्मामीटर का पारा कई प्वाइंट ऊपर चला जाता था। प्रारंभ में नरेन्द्र बड़े विश्वास के साथ अपने दादा की ओर देखता रहा था, जैसे उसकी आंखें कह रही हों—मुझे बचा लो, दादा !···आधी रात के बाद उसकी आंखें बुझने लगी थीं, जैसे वे कह रही हों—तुम भी मुझे नहीं बचा सके दादा ! डाक्टर राजेन्द्रलाल तक को उसकी बीमारी समझ नहीं आई थी, बाकी डाक्टरों का तो कहना ही क्या ! बहुत ही तेज़ बुखार था, रह-रहकर नरेन्द्र के शरीर में अकड़ और ऐंठन की लहर-सी चलती थी और उसकी प्रतिक्रिया भी स्पष्ट दिखाई देती थी। पहले कुछ घंटों तक नरेन्द्र की आंखें जलती-सी दिखाई देती रहीं, उसके बाद क्रमशः बुझती-सी। कोई कुछ

कर नहीं सका था और डाक्टर राजेन्द्रलाल की आंखों का तारा, नरेन्द्र, सूर्योदय से पूर्व ही चल बसा था।

इस भारी चोट ने डाक्टर राजेन्द्रलाल के जीवन को जैसे झकझोर-कर रख दिया था। इसी भारी चोट ने उन्हें मनुष्य से पिशाच बना दिया था। लोगों को आश्चर्य होता था कि यह क्या हो गया।

आधी रात का समय था। तेज़ चाल से आई एक कार डाक्टर राजेन्द्रलाल की कोठी के सामने रुकी। एक वृद्ध सज्जन अत्यन्त शीघ्रता से इस कार से बाहर निकले। कोठी का फाटक बन्द था और दूर बरामदे में टार्च हाथ में लिए चौकीदार रामायण की चौपाइयां गुनगुना रहा था। फाटक पर कार को रुकते देखकर वह उठ खड़ा हुआ। उसी समय वृद्ध सज्जन ने ऊंचे स्वर में आवाज़ दी, 'डाक्टर साहब !'

चौकीदार शीघ्रता से फाटक के निकट चला आया। वह समझा, शायद डाक्टर साहब के कोई मित्र या रिश्तेदार कहीं बाहर से इस वक्त यहां पहुंचे हैं। और सच बात तो यह है कि वृद्ध सज्जन की ऊंची आवाज की प्रतिक्रिया के रूप में ही उसने दौड़कर फाटक खोल दिया। सोचने का तो उसे अवसर ही नहीं मिला। भीतर आते ही उन वृद्ध सज्जन ने पूछा, 'डाक्टर साहब कहां हैं ?'

चौकीदार ने कहा, 'वे सो रहे हैं।'

वृद्ध सज्जन ने कहा, 'उन्हें जगा दो।' पर चौकीदार को चुपचाप खड़े देखकर वे तेजी से कोठी की ओर बढ़े और आतुर कंठ से उन्होंने पुनः आवाज़ दी, 'डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब !'

चौकीदार को जैसे अब जाकर मामला समझ में आया। चौकीदार ने बड़ी नम्रता से कहा, 'आवाज़ मत दीजिए साहब, डाक्टर साहब सुबह नौ बजे से पहले कभी किसी मरीज़ को नहीं देखते।'

पर वे वृद्ध सज्जन 'डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब !' की पुकार लगाते हुए कोठी की ओर बढ़ चले। उनकी आवाज़ में इतनी गहरी कातरता

और घबराहट थी कि घर के अन्य तीनों नौकर भी जाग गए। उन्होंने देखा कि चौकीदार फाटक खोल देने की भूल से बहुत अधिक घबरा गया है।

कुछ ही क्षणों में वे वृद्ध सज्जन कोठी के बरामदे को पार कर एक दरवाज़े पर ज़ोर-ज़ोर से दस्तक देने लगे। आधी रात के सन्नाटे में, जब छोटा-सा खटका भी ऊंची आवाज के समान सुनाई देता है, वृद्ध सज्जन की कातरतापूर्ण पुकारों और अत्यन्त शीघ्रता से दरवाज़े पर पड़ने वाली दस्तकों ने जैसे उस कोठी में एक तहलका उत्पन्न कर दिया। भीतर से आवाज आई, 'कौन बदतमीज़ यह शोर मचा रहा है ?'

वृद्ध सज्जन और भी ऊंचे पर करुण स्वर में चिल्लाए, 'मुझे बचाइए, डाक्टर साहब !'

भीतर से सुनाई दिया, 'चौकीदार ! इस नालायक को जूते मारकर बाहर निकाल दो।'

वृद्ध सज्जन ने तत्काल जवाब दिया, 'डाक्टर साहब, मुझे आप बेशक जूते मार लें, पर मेरी औलाद को बचाइए ! मेरे वंश को बचाइए।'

भीतर बत्ती जल गई। वृद्ध सज्जन को ज़रा-सा आश्वासन हुआ कि डाक्टर राजेन्द्रलाल बाहर आ रहे हैं, पर बत्ती जलने के दूसरे ही क्षण भीतर से गरज सुनाई दी, 'ओ चौकीदार के बच्चे ! इस आदमी को तू बाहर निकालता है कि मैं तेरी गरदन नापूं ?'

पर वृद्ध सज्जन ने डाक्टर के शयनागार के दरवाज़े को ज़ोर-ज़ोर से खटखटाते हुए कहा, 'आप मुझे चाहे जो सजा दें, मैं आपको अपने साथ ले जाकर ही रहूंगा।'

बन्द दरवाज़े के पीछे जैसे बम का विस्फोट हो गया, 'हरामज़ादे ! नामाकूल ! उल्लू के पट्ठे ! तू कौन है जो मुझे ले जाकर ही रहेगा !'

और इसी क्रोध में बड़बड़ाते हुए डाक्टर राजेन्द्रलाल अपने शयनागार का दरवाज़ा खोलकर बाहर बरामदे में आ गए। चौकीदार और बाकी तीनों नौकर सकते में आ गए। आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ

था। मालिक की नाराजगी के डर से वे सब वृद्ध सज्जन को घेरकर इस तरह खड़े हो गए, जैसे उन्हें खींचकर बाहर ले जाएंगे। पर उन वृद्ध सज्जन में जैसे कोई अदम्य स्फूर्ति आ गई थी। अनुचरों को धकेलकर वे डाक्टर राजेन्द्रलाल के सम्मुख जा पहुंचे और अत्यन्त नम्र भाव से उन्होंने कहा, 'डाक्टर साहब, मेरे बेटे को बचा लीजिए। वह चला गया तो मैं निर्वंश हो जाऊंगा।'

डाक्टर राजेन्द्रलाल क्रोध से कांप रहे थे, पर एक वृद्ध सज्जन को देखकर गाली-गलौज करने का दुस्साहस उन्हें भी नहीं हुआ। फिर भी उन्होंने कहा, 'अपना वक्त बेकार खराब न कीजिए। शहर के और सब डाक्टर मर नहीं गए हैं। जाइए, किसी और को ले जाइए।'

वृद्ध सज्जन ने बड़ी आजिजी से कहा, 'डाक्टर साहब, मैं आपको पूरी फीस दूंगा।'

'मेरी पूरी फीस दोगे ?'

'जी, जरूर, मैं आपकी पूरी फीस दूंगा।'

'रात के वक्त मरीज देखने के लिए मैं दस हजार रुपया लूंगा।' बहुत स्पष्ट खीझ से डाक्टर ने कहा।

'मुझे मंजूर है, डाक्टर साहब !'

डाक्टर राजेन्द्रलाल भला इस बात का क्या जवाब देते ! संजीदगी से इतनी बड़ी मांग भला कौन कर सकता था ? वृद्ध की बात को भी उन्होंने गम्भीरता से नहीं लिया। कुछ क्षण तक वे चुपचाप खड़े रहकर कुछ सोचते रहे। उसके बाद उन्होंने वृद्ध सज्जन की आंखों में गहराई से देखा। वे बूढ़ी आंखें आंसुओं में इस बुरी तरह डूबी हुई थीं कि ठीक से दिखाई भी नहीं देती थीं। डाक्टर साहब ने बड़ी शान्ति से कहा, 'एक मिनट ठहरिए। मैं तैयार होकर अभी आया।'

राह में डाक्टर राजेन्द्रलाल को उन सज्जन का पूरा परिचय मिल गया। मालरोड पर वृद्ध सज्जन की शानदार कोठी है, जो डाक्टर ने देखी है। वे नगर के अत्यन्त सम्भ्रान्त व्यक्ति हैं। उनके वंश में केवल

उनका एक पौत्र ही बच रहा है, केवल वही उनके जीवन का अवलम्ब है। वृद्ध सज्जन ने उसका नाम 'दीपक' रखा है, क्योंकि वह उनके जीवन का दीपक है। दीपक की आयु सोलह बरस की है। सुबह से वह बीमार है। उसके इलाज के लिए वे कितने ही डाक्टरों को बुला चुके हैं, पर उसकी दशा निरन्तर बिगड़ती जा रही है।

कुछ ही मिनटों के बाद डाक्टर राजेन्द्रलाल दीपक के सिरहाने खड़े थे। उनके चेहरे पर वही चिरपरिचित गम्भीर भाव था। उन्होंने देखा कि बीमार को बहुत तेज़ बुखार है। थर्मामीटर लगाया तो पाया कि दीपक का बुखार एक सौ छह डिग्री तक पहुंच रहा है। डाक्टर साहब ने बहुत शीघ्र यह भी देख लिया कि रह-रहकर बीमार के शरीर में अकड़ और ऐंठन की लहरें-सी चलती हैं। डाक्टर राजेन्द्रलाल एकाएक चौंक गए। क्षणभर में उनकी सम्पूर्ण चेतना जैसे पुंजीभूत होकर सतर्क और एकाग्र हो गई। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उनके सम्मुख दीपक नहीं, उनका लाड़ला नरेन्द्र लेटा हुआ है और वे उसकी बीमारी का मुआइना कर रहे हैं। बीच के तीन साल जैसे एकाएक मिटकर धुल-पुंछ गए। पूरी तन्मयता के साथ वे रोगी की परीक्षा करने लगे। दीपक के दादा डाक्टर के पीछे दीवार का सहारा लेकर खड़े हुए थे। उनकी ओर डाक्टर का ध्यान ही न था। न जाने कितना समय इसी तरह निकल गया और डाक्टर साहब के चेहरे की गम्भीरता उसी तरह कायम रही। पर क्रमशः एक क्षण ऐसा भी आया, जब डाक्टर साहब के चेहरे की गम्भीरता और कठोरता एकाएक पिघलकर नष्ट हो गई। उन्होंने मुंह फेरकर वृद्ध सज्जन की ओर देखा और कहा, 'भाई साहब, अपने बेटे को तो मैं नहीं बचा सका था, पर आपके बेटे को मैं ज़रूर बचा लूंगा !'

वृद्ध सज्जन ने आह्लादपूर्ण आश्चर्य से डाक्टर साहब की ओर देखा, तो पाया कि अब की बार डाक्टर की आंखें आंसुओं में डूबी हुई हैं। क्षण-भर रुककर डाक्टर साहब ने कहा, 'तीन बरस पहले मेरे बेटे को भी ठीक यही बीमारी हुई थी और तब मैं कुछ भी समझ नहीं पाया था। वह मेरे

जीवन की सबसे बड़ी हार थी। आज दीपक को उसी हालत में देखकर वह बीमारी मेरी समझ में आ गई है। आप निश्चिन्त रहें, मैं बहुत जल्द स्थिति को संभाल लूंगा।'

और सचमुच डाक्टर राजेन्द्रलाल दीपक को यमराज के मुख से छीन लाए। तीन ही दिन में उसका बुखार उतर गया। इन तीनों दिन डाक्टर राजेन्द्रलाल एक क्षण के लिए भी अपने घर नहीं गए, लगातार वे दीपक के आसपास ही बने रहे।

जब दीपक पूरी तरह स्वस्थ हो गया, तो वृद्ध सज्जन ने डाक्टर के नाम लिखे गए एक चेक में रकम की जगह खाली छोड़कर अपने हस्ताक्षर किए और वह चेक सोने की प्लेट में रखकर डाक्टर राजेन्द्रलाल के सम्मुख पेश कर दिया। डाक्टर को मालूम था कि उन वृद्ध सज्जन का चेक, चाहे कितनी भी राशि का क्यों न हो, बैंक द्वारा स्वीकृत होगा। वृद्ध सज्जन कृतज्ञता के मूर्त रूप दिखाई दे रहे थे। चेक देखकर डाक्टर राजेन्द्रलाल के चेहरे पर मुस्कराहट छा गई। उन्होंने धीरे से चेक उठाया, उसे देखा और अपनी कलम निकालकर उसपर तीस हज़ार की रकम भरी। साथ ही चेक की पीठ पर अपने हस्ताक्षर-सहित यह लिख दिया, 'कृपया दीपक को यह राशि दे दें।' और उसके बाद सोने की प्लेट में वह चेक दीपक की ओर बढ़ा दिया।

डाक्टर राजेन्द्रलाल आज फिर से अपने नगर के सबसे अधिक लोकप्रिय नागरिक हैं। बीच के तीन साल जैसे उनके जीवन में एक क्षेपक के समान आए थे और चले गए। उनका इतना ही चिह्न उनपर बाकी है कि अब वे पहले की अपेक्षा अधिक गम्भीर बन गए हैं।

खन्ने का कुआं

हीर और रांझा की प्रणयभूमि तख्तहज़ारा के निकट एक बहुत पुराना कुआं है, जो 'खन्ने का कुआं' नाम से दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। कुआं खूब गहरा और काफी चौड़ा है। उसकी जगत बहुत पक्की और ऊंची है तथा पानी मीठा और खूब ठण्डा है। कुएं के चारों ओर शीशम के विशालकाय वृक्ष हैं, जिनकी छाया दूर-दूर के थके-मांदे पथिकों को अपनी ओर आने का निमन्त्रण-सा देती रहती है। तख्तहज़ारा के सभी सार्वजनिक कार्य इन्हीं वृक्षों की छाया में होते हैं। इन वृक्षों के बीचों-बीच एक खासा लम्बा-चौड़ा पक्का फर्श है। पश्चिम की ओर कुछ ही दूरी पर मुसाफिरों के नमाज़ पढ़ने के लिए बिना छत की एक छोटी-सी मस्जिद बनी हुई है और फर्श के पूर्व की ओर एक छोटा-सा शिवालय। बीसियों बरसों तक इस शिवालय में नियमित रूप से आरती और पूजा-पाठ होता रहा है और बीसियों ही बरस से इस मस्जिद में खुदा की इबादत की जाती रही है। लोगों को वह दिन बहुत समय तक याद रहा, जब लाला खुशीराम ने आर्यसमाजियों की संध्या-प्रार्थना के लिए भी इसी फर्श के उत्तर में एक पक्का चबूतरा-सा बनवा दिया था।

परन्तु अब कुछ बरसों से ज़माना बदल गया है। सैकड़ों मीलों की दूरी से सैकड़ों और हज़ारों गरीब और दुखी इन्सान, जिन्हें लोग 'महा-जिरीन' कहते हैं, तख्तहज़ारा पहुंचे हैं और उनके डर से इस इलाके के ऐसे सभी लोग घरबार छोड़कर दौड़ गए हैं, जो इस शिवालय का या संध्या-उपासना के इस चबूतरे का इस्तेमाल कर सकते थे। परिणाम यह

हुआ है कि नमाज़ के वक्त मस्जिद में तिल रखने को भी जगह नहीं मिलती, मगर संध्या-उपासना के चबूतरे पर महाजिरीन सोते या खाना बनाते हैं और शिवालय एकदम से वीरान पड़ा हुआ है।

ज़माना बदल गया है, पर खन्ने का कुआं अब भी 'खन्ने का कुआं' है। महाजिर रहमतुल्ला का इस कुएं पर कब्ज़ा है। वह बहुत चाहता है कि लोग अब इस कुएं को 'रहमत का कुआं' कहें। महाजिरीनों के लिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पर तख्तहज़ारा के पुराने नागरिक इस नाम-परिवर्तन की कभी कल्पना भी नहीं कर सकते। उन्हें यह भी मालूम है कि खन्ने का कुआं सिर्फ तख्तहज़ारा में ही मशहूर नहीं है, आसपास के पचासों गांवों और बस्तियों के लोग भी इस कुएं को इसी नाम से जानते हैं और जानते रहेंगे।

कल ही की बात है, रहमतुल्ला ने तख्तहज़ारा के बुज़ुर्गों और महाजिरीनों के चुने हुए लोगों को एकसाथ दावत दी थी। उसके अधिकांश मेहमानों के लिए इस दावत का उद्देश्य बहुत साफ था। यही कि रहमतुल्ला खन्ने का कुआं और उससे सम्बद्ध पचास एकड़ ज़मीन पर सदा के लिए पक्का अधिकार कर लेना चाहता है। और आम तौर से लोगों को इसमें एतराज़ भी क्या हो सकता था। मगर दावत के बाद जिस पेचीदा रूप में रहमतुल्ला ने अपने अभ्यागतों के सम्मुख यह मसला पेश किया, उससे अधिकांश लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि वह पास की मस्जिद को न सिर्फ बड़ा कर देना चाहता है, बल्कि उसपर वह छत और मीनार भी बनवाने को तैयार है, अगर इस कुएं का नाम 'खन्ने का कुआं' से बदलकर 'रहमत का कुआं' कर दिया जाए।

तख्तहज़ारा के सभी पुराने निवासी चुपचाप बैठे रहे। रहमत के प्रस्ताव का न किसीने विरोध किया और न किसीने समर्थन ही। बरकत मियां उनमें सबसे अधिक वयोवृद्ध थे और इलाके भर में उनकी इज़्ज़त थी। अधिकांश महाजिरीनों को अपने प्रस्ताव का समर्थन करता हुआ पाकर रहमतुल्ला की हिम्मत बढ़ी और भरसक नम्रता के साथ उसने

कहा, 'कहिए बरकत मियां, इस बारे में आपकी क्या राय है ? आप इस इलाके के बुजुर्गवार हैं।'

बरकत मियां ने कहा, 'कुएं पर तुम्हारा कब्ज़ा है भैया, तुम्हें इस कुएं का नया नाम रखने से कौन रोक सकता है ? चाहो तो अपने नाम का पत्थर भी इस कुएं पर लगवा लो।'

'तो आप लोगों को इसमें कोई एतराज़ तो नहीं है ?'

'हम लोगों के एतराज़ करने या न करने से क्या आता-जाता है ? बात तो सिर्फ इतनी ही है कि तीन पुश्तों से इस इलाके भर के लोग इस कुएं को खन्ने का कुआं नाम से ही जानते हैं। तुम तो नाम बदल दोगे भैया। मगर सवाल तो यह है कि इलाके-भर के लोग तो इस कुएं का नाम नहीं बदल देंगे।'

रहमतुल्ला को सूझ नहीं पड़ा कि इस बात का वह क्या जवाब दे। इसी बीच में किसी महाजिर ने पूछा लिया, 'चचाजान, मेहरबानी करके यह तो बताइए कि आखिर इस कुएं का यह नाम पड़ा किस तरह ? और इलाके-भर में यही कुआं क्यों इतना प्रसिद्ध हो गया ?'

बरकत मियां ने बड़े शान्त भाव से कहा, 'वह एक लम्बी कहानी है। आप लोगों को न जाने उसमें दिलचस्पी होगी भी या नहीं।'

लोगों की उत्सुकता सचमुच जागरित हो गई और एकसाथ कितने ही कण्ठों ने कहा, 'हां, हां, जरूर हमें वह कहानी सुनाइए।'

क्षण-भर चुपचाप कुछ सोचते रहने के बाद बरकत मियां उठकर खड़े हो गए। सब तरफ सन्नाटा छा गया और बड़े इत्मीनान के साथ बरकत मियां ने कहना शुरू किया :

बात उस ज़माने की है, जब इस मुल्क पर अभी फिरंगियों का राज भी कायम नहीं हुआ था और न जगह-बेजगह रेलों का जाल ही बिछा था। उस ज़माने में सारा तख़्तहज़ारा एक था। एक बड़े कुटुम्ब के समान। तख़्तहज़ारे की सभी बहू-बेटियां सारे कस्बे की बहू-बेटियां थीं

और तख्तहजारे के बुज़ुर्ग सारे कस्बे के बुज़ुर्ग।

इत्तिफाक की बात है कि उस ज़माने के एक इज़्ज़तदार सफेदपोश लाला मन्साराम अपनी तिजारत के सिलसिले में यहां से एक सौ पचहत्तर मील दूर के लाहौर शहर में जा पहुंचे। लाहौर उस ज़माने में भी बहुत बड़ा शहर था। तंग गलियों और उससे भी तंग बाज़ारों के दोनों ओर चार-चार, पांच-पांचमंज़िला मकान थे। शहर के चारों तरफ ऊंची फसील थी। फसील के चारों ओर खाई और इस खाई के बाहर एक लम्बा लम्बा बाग। लाहौर की चमक-दमक से लाला मन्साराम की आंखें जैसे चौंधिया गईं और उन्होंने फैसला किया कि अपनी लड़की का विवाह वह लाहौर में ही करेंगे।

अब लाला मन्साराम की यह लड़की जसोदा सारे तख्तहज़ारा की लाड़ली थी। जितनी ही वह शोख और चंचल थी उतनी ही बातूनी और हसीन भी। जसोदा हंसती थी तो मानो फूल झड़ते थे। मन्साराम का ख्याल था कि उनकी लाड़ली बेटी के लिए लाहौर ही उपयुक्त स्थान रहेगा। उन्हें अपनी जात-बिरादरी के लोग लाहौर में भी मिल गए और उनकी मदद से सरीन के मुहल्ले के एक अमीर खानदान में उन्होंने जसोदा के लिए एक लड़का भी तलाश कर लिया।

घर वापस आकर लाला मन्साराम ने जब इस बात का ज़िक्र किया तो जैसे एक तूफान उठ खड़ा हुआ। हीर के बाद जसोदा दूसरी लड़की थी, जिसके बारे में तख्तहज़ारा-भर में इतनी चर्चा हुई। लोगों ने लाला को समझाने की बहुत कोशिश की कि वह जसोदा को इस तरह जिलावतन न करें। मगर लाला अपने इरादे पर डटे रहे और कुछ ही दिनों के बाद जसोदा को एक बन्द बैलगाड़ी में बैठाकर वे लाहौर ले गए।

दो महीनों के बाद जब मन्साराम वापस लौटे तो मालूम हुआ कि वे जसोदा का विवाह अपने मनचाहे लड़के से कर आए हैं। लाला ने बताया कि जसोदा के खाविन्द का परिवार बहुत अमीर है। उनका बहुत

बड़ा कारोबार है, कितनी ही बड़ी-बड़ी हवेलियां हैं और उनके घर में कितने ही मन सोना-चांदी है। लाला मन्साराम घर-घर जाकर अपने जंवाई की चरचा करते थे, मगर कस्बे का एक भी शख्स उनकी बातों में उत्साह प्रकट नहीं करता था। जसोदा के तख्तहज़ारा से चले जाने की बात से कस्बे का एक भी आदमी खुश नहीं था। शायद लाला मन्साराम भी नहीं।

दिन बीतने लगे और एक-एक दिन करके पूरा एक साल बीत गया। मगर लाहौर से जसोदा अपने पीहर वापस नहीं आई। पूरे साल-भर तक तख्तहज़ारा में कस्बे की लाड़ली बेटी जसोदा की कोई खबर तक नहीं आई।

लाला मन्साराम आखिर घबरा गए। उन्होंने अपने नाई मियां अल्लाबख्श को बुलाया। मियां के जिम्मे यह काम सौंपा गया कि लाहौर जाकर वे जसोदा का कुशल-समाचार मालूम करें। मियां अल्लाबख्श की उम्र पचास को पार कर चुकी थी। उनकी दाढ़ी में सफेद बाल साफ तौर से झलक दिखाने लगे थे। अपनी इस उम्र तक मियां अल्लाबख्श कभी तख्तहज़ारा से पच्चीस मील से अधिक दूर भी नहीं गए थे। उनके लिए लाहौर जाना आज के विलायत जाने से भी बढ़कर था। मगर अपनी भांजी का हालचाल जानने के लिए वे बड़ी खुशी से लाहौर जाने को तैयार हो गए। जसोदा को देने के लिए लाला मन्साराम ने दस खच्चरों पर तरह-तरह की चीज़ें भी मियां अल्लाबख्श के साथ भेजीं।

पूरे पच्चीस दिनों के थका देने वाले सफर के बाद मियां अल्लाबख्श लाहौर पहुंचे। आखिरी पड़ाव से वे एक चौथाई रात बाकी रहते चल दिए थे। जब वे लाहौर की चहारदिवारी के बाहर पहुंचे, तो सुबह की रोशनी सब तरफ फैलने लगी थी। शहर के दरवाज़ों के शानदार और ऊंचे मेहराब देखकर मियां अल्लाबख्श सचमुच बहुत प्रभावित हुए। शहर की ऊंची चहारदिवारी के भीतर दूर-दूर तक साफ-सुथरे, पक्के और

बहुत ऊंचे मकान फैले हुए दिखाई दे रहे थे। मन ही मन उन्होंने जसोदा के भाग्य को सराहा।

सरीन मोहल्ले के बारे में पूछते-पाछते जब मियां अल्लाबख्श का काफ़िला लाहौरी दरवाजे तक पहुंचा, तो वहां शहर के बाहर एक बहुत शानदार सराय उन्हें दिखाई दी। खच्चर वालों ने मियां से कहा कि सराय में चलकर वे मुंह-हाथ धो लें और कुछ खा-पीकर तब सरीन का मोहल्ला तलाश करें। मगर मियां में इसकी ताव कहां थी। खच्चर वालों को सराय में रुकने का हुक्म देकर वे अकेले सरीन के मोहल्ले की तलाश में लाहौरी दरवाज़े के भीतर चले गए।

मियां अल्लाबख्श ने पाया कि जैसे वे एक बहुत बड़ी भूल-भुलैयां में फंस गए। तंग गलियों और ऊंची-ऊंची हवेलियों का वह तांता जैसे समाप्त होने में ही न आता था। वे आधी रात के जगे थे, उसपर सफर की थकावट ने उन्हें चकनाचूर कर दिया था। आखिर थके-हारे जब वे जसोदा के मकान तक पहुंचे तो सूरज आसमान के बीच तक आ पहुंचा था।

किसी जानकार व्यक्ति से पूछकर मियां अल्लाबख्श ने एक ऊंची हवेली के बन्द दरवाज़े पर दस्तक दी और ऊंचे स्वर में पुकारा, 'जसोदा! बेटी जसोदा!'

और उसी वक्त मियां को घर के आंगन में किसीके दौड़ने की आवाज सुनाई दी। अगले ही क्षण घर का दरवाज़ा खुल गया। मैले-कुचैले कपड़ों में एक मरीज़-सी, पीली-सी लड़की दौड़ी-दौड़ी आई और चीखती-सी आवाज़ में 'चाचा! चाचा!' कहकर उसने मियां अल्लाबख्श को अपने बाहुपाश में ले लिया। मियां को क्षण-भर तो अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ, परन्तु आखिर उन्हें इस बात पर यकीन करना ही पड़ा कि मैले-कुचैले कपड़ों में आधी दोपहर तक घर का आंगन लीपती हुई यह कमज़ोर-सी लड़की उनकी अपनी लाड़ली भांजी जसोदा ही है। मियां अल्लाबख्श की आंखों में आंसू भर आए। सारे

तख़्तहज़ारा में जीवन फूंकने वाली वही जसोदा उनके अंगरखे में अपना मुंह छिपाए सिसक रही थी। जैसे सारे तख़्तहज़ारा की लाज सिसक रही हो।

दो-तीन मिनट इसी तरह बीत गए। दोनों के मन का बोझ कुछ हल्का हुआ तो मियां अल्लाबख्श ने जसोदा के सिर पर हाथ रखकर पूछा, 'तेरा हाल कैसा है बेटी ?'

जसोदा ने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'मेरा हाल जानना चाहते हो चाचा ?'

मियां ने कहा, 'हां, हां बेटी। इसीलिए तो मिनट-भर का आराम लिए बिना मैं घण्टों तक इस बड़े शहर की खाक छानता हुआ सीधा तुम्हारे पास आया हूं बेटी।'

जसोदा ने कहा, 'अभी अपना हाल बताती हूं चाचा !' और यह कहकर वह धीरे-धीरे सहन की ओर बढ़ी। वहां एक बहुत बड़ा बरतन रखा हुआ था। इस बरतन में गोबर और मिट्टी का घोल भरा हुआ था। साफ़ दिखाई दे रहा था कि जसोदा ने हाल ही में आधा आंगन इसी गोबर से लीपा है और आधा आंगन लीपना अभी बाकी है। इस बरतन तक पहुंचकर जसोदा ने बड़े इत्मीनान के साथ गोबर-सना पोची हाथ में उठाया और वह मियां के पास लौट आई। पहले तो जसोदा ने मियां अल्लाबख्श के पैरों की मिट्टी अपने सिर पर लगाई। उसके बाद एकाएक उसने वह गोबर-भरा पोचा मियां अल्लाबख्श के मुंह पर फेर दिया। साथ ही साथ वह बोली, 'इस गुस्ताखी के लिए अपनी लाड़ली बेटी को माफ करना चाचा ! तुम मेरा हाल जानना चहाते थे न मेरे प्यारे चाचा ? मेरे पिताजी से जाकर कहना कि उनकी नाज़ोंपली बेटी का यह हाल है ?"

मियां अल्लाबख्श ने अपने चेहरे को पोंछा तक भी नहीं। भर्राए हुए स्वर में उन्होंने इतना ही कहा, 'तुमने बहुत अच्छा किया बेटी ! मुझे लाहौर का पानी तक हराम है ! मैं अगर अपने बाप की औलाद

हूं तो मैं इसी सूरत में और इसी वक्त तख्तहज़ारा के लिए रवाना हो जाऊंगा और वहां सब लोगों को बताऊंगा कि हमारी लाड़ली जसोदा का यह हाल है।'

और सचमुच पानी तक पीए बिना मियां अल्लाबख्श उसी वक्त वापस लौट चले। जसोदा ने उनसे बहुत अनुनय-विनय की कि कुछ आराम तो कर लें। यह तो उसे मालूम ही था कि बेटी के घर में वे कुछ भी खाएंगे नहीं। मगर मियां नहीं माने और तेज़ सांडनी पर सवार होकर वह सात दिनों में ही तख्तहज़ारा आ पहुंचे। इन सात दिनों में उन्होंने अपना मुंह पोंछा तक भी नहीं। उनका मुंह और दाढ़ी उस गोबर-सनी मिट्टी से अभी तक लबालब भरे थे।

उस ज़माने में भी तख्तहज़ारा के सभी सार्वजनिक कार्य इसी जगह हुआ करते थे। तब भी यहां शीशम के घने-घने वृक्ष विद्यमान थे। सप्ताह भर से गोबर-मिट्टी-सना अपना चेहरा लिए जिस दिन मियां अल्लाबख्श तख्तहज़ारा वापस लौटे, उसी दिन की सांझ को इसी जगह कस्बे के सभी बुज़ुर्ग जमा हुए।

एक लम्बी-चौड़ी बहस के बाद यह फैसला हुआ कि हम किसी भी तरह जसोदा को और उसके खाविन्द को लाहौर में नहीं रहने देंगे। दोनों को तख्तहज़ारा ले आया जाएगा और उन्हें यहीं आबाद कर दिया जाएगा।

जिन बड़ी-बड़ी कोशिशों से तख्तहज़ारा के नागरिक जसोदा और उसके पति को सदा के लिए लाहौर से यहां ले आने में कामयाब हुए, उनकी तफसीलों में मैं नहीं जाऊंगा। इतना ही कहना काफी है कि सरीन के मुहल्लेवालों को इस बात का पूरा यकीन हो गया कि तख्तहज़ारावालों की बात मानने में ही खैर है और तब मियां अल्लाबख्श की वापसी के पूरे तीन महीने के बाद हमारे बुज़ुर्गों की मुराद पूरी हुई।

अब एक और सवाल उठ खड़ा हुआ। तख्तहज़ारा के नागरिक एक बार और इसी जगह एकत्र हुए। सवाल यह था कि जसोदा और उसका

पति अब सारे तख्तहज़ारा के बेटी और जँवाई हैं। सिर्फ लाला मन्साराम ही उनके बुज़ुर्ग नहीं हैं। लोग कहते थे कि जसोदा और उसके घरवाले को तख्तहज़ारा में इज़्ज़त के साथ आबाद करने की जिम्मेवारी सारे तख्त-हज़ारा पर है। मगर लाला मन्साराम इस बात को मानने से इन्कारी थे। खैर, नागरिकों की उस दिन की सभा में लाला मन्साराम ने पाया कि तख्तहज़ारा का एक भी नागरिक उनका साथ देने को तैयार नहीं है।

जैसाकि मैंने अभी बताया था, उस ज़माने में भी तख्तहज़ारा के सार्वजनिक कार्य इसी जगह हुआ करते थे। तब भी यह कुआं यहीं विद्य-मान था, परन्तु बिलकुल कच्ची-सी हालत में। तख्तहज़ारा के नागरिकों ने निश्चय किया कि सारे कस्बे की ओर से यही कुआं और इसके साथ ही एक सौ पक्के बीघे ज़मीन जसोदा और उसके घरवाले को दे दी जाए। यह भी निश्चय हुआ कि इस कुएं को पक्का बना दिया जाए। उसी जगह सब बुज़ुर्गों ने अपनी ज़मीन का एक-एक हिस्सा इस कुएं के साथ लिखा दिया।

अगले ही दिन से इस कुएं पर काम शुरू हो गया। तख्तहज़ारा के सब लोगों ने इस कुएं को पक्का बनाने में मदद दी। और जब यह कुआं तैयार हो गया तो सम्पूर्ण तख्तहज़ारावालों की तरफ से मियां अल्ला बख्श ने यह कुआं जसोदा और उसके घरवाले को भेंट कर दिया। जसोदा के घरवाले की जात खन्ना थी, इससे बहुत जल्द यह कुआं इस सारे इलाके में 'खन्ने का कुआं' नाम से मशहूर हो गया।

इतना कहकर मियां बरकत चुप हो गए। वातावरण में एक विशेष प्रकार की पवित्रता जैसे आप से आप व्याप्त हो गई। मिनट भर तक सब ओर पूरी चुप्पी रही। उसके बाद तख्तहज़ारा के एक और बूढ़े बुज़ुर्ग उठकर खड़े हो गए और उन्होंने इतना ही कहा, 'और वह मियां अल्लाबख्श हमारे बुज़ुर्ग मियां बरकतउल्ला के दादाजान थे।'

वातावरण की पवित्रता में जैसे और भी अधिक चमक आ गई। थोड़ी देर तक सब लोग चुपचाप बैठे रहे और उसके बाद रहमतुल्ला के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कोई भी निश्चय किए बिना वह सभा जैसे आप से आप बरखास्त हो गई।

पहला नास्तिक

यों तो आज भी मानव-जीवन एक ऐसा लम्बा और निरन्तर सफर है, जिसमें मौत के अलावा और कोई मंज़िल नहीं आती। पर आज से हज़ारों बरस पूर्व जब हम मनुष्यों के प्रथम पूर्वजों के काफिले एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते थे, उनका सारा जीवन मोटे अर्थों में भी सफर और घुमक्कड़ी का जीवन था।

जीमूत के पिछले छः महीनों की दिनचर्या असाधारण रूप से कष्ट-मय और साहसपूर्ण रही थी। पहले पचीस दिन उसे एक रेगिस्तान को पार करने में लगे थे, वहां न वृक्ष थे और न यथेष्ट आखेट ही उपलब्ध था। अपने पिता-माता के संरक्षण में एक बहुत बड़े आर्य-काफिले के साथ अत्यन्त कष्ट से उसने वह रेगिस्तान पार किया था। यही गनीमत है कि इस रेगिस्तान में भी पानी का स्तर पृथ्वी के धरातल से बहुत नीचे नहीं था और ऊपर की रेत हटाकर बारह-चौदह हाथ गहरा गढ़ा खोद लेने पर उसमें से पानी निकल आता था। आर्यावर्त के उत्तर-भाग को पारकर हिमालय की ओर बढ़ते हुए आर्य-अनार्य सभी काफिले उस क्षेत्र में इसी तरीके से जल प्राप्त कर यात्रा करते थे।

जीमूत का आर्य-काफिला इस रेगिस्तान में प्रातः और सायं यात्रा करता था। दिन का दूसरा और तीसरा पहर वन्य पशुओं की त्वचाओं से बने तम्बुओं में बिताया जाता था। सांझ के सफर के बाद जहां काफिला पड़ाव डालता, आर्यनारियां भोजन तैयार करने में लगतीं और पुरुष शस्त्र बनाने, लकड़ी तथा चमड़े से विभिन्न सामान तैयार करने के अति-

रिक्त अस्थायी कुआं खोदने का कार्य भी करते। इस कार्य में अधिक दिक्कत इस कारण न होती कि पहले से गुजरे काफिलों द्वारा खोदे गए कच्चे कुओं में भर गई रेत को फिर से निकालना उतना कठिन नहीं था।

पर रेगिस्तान पार कर लेने के बाद जीमूत के काफिले को बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। रेगिस्तान के पार झाड़-झंखाड़ थे और उनके बाद चट्टानी प्रदेश में एक नदी, जिसे उस काफिले ने बड़ी मुसीबतें उठाकर अपने पालतू पशुओं की सहायता से तथा चमड़े की मशकों से पार किया। इस कार्य में उन्हें अपने कुछ साथियों और जानवरों से भी हाथ धोना पड़ा था। नदी के पार विशाल और सघन वन था और उसमें विशालकाय हिंसक पशु थे। पत्थरों के औज़ारों तथा तेज़ बल्लमों से इन पशुओं का सामना करना आसान नहीं था। इन जंगलों में खाद्य फल तथा शिकार बहुतायत से थे, पानी की भी कमी नहीं थी। पर पृथ्वी का आंचल जैसे मानव-द्वेषी सरीसृपों और हिंसक वन्य पशुओं से भरा पड़ा था। इनमें से कितने ही सरीसृपों और हिंसक पशुओं का आकार और वज़न मानव से सैकड़ों गुना अधिक था। स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों को साथ लेकर इस भू-भाग में आगे बढ़ सकना साधारण काम नहीं था। पर इन सब विषम परिस्थितियों का सामना आज से हज़ारों वर्ष पूर्व का मानव उस साहस और समझदारी से कर रहा था, जिस साहस और समझदारी से आज का सुसंस्कृत मानव भी अपनी आज की समस्याओं का सामना नहीं कर पा रहा।

पिछले कुछ दिनों की ऊबड़-खाबड़ चढ़ाई के बाद कल रात जीमूत के इस काफिले ने एक हरे-भरे टीले की चोटी पर विद्यमान एक विस्तृत मैदान में अपना पड़ाव डाला था। जब यह काफिला इस स्थान पर पहुंचा था, तब तक रात का अन्धकार सभी ओर व्याप्त हो चुका था, इससे किसीको यह मालूम नहीं हो पाया था कि चारों ओर की परिस्थितियां कैसी हैं। उत्तर दिशा से एक निरन्तर शोर-सा स्पष्ट सुनाई दे रहा था। ज्यों-

ज्यों रात बढ़ती गई, त्यों-त्यों सन्नाटा भी बढ़ता गया और उस सन्नाटे में यह निरन्तर सुनाई देनेवाला शोर भी बढ़ता चला गया था। पर शायद इस संगीतमय शोर ने मानवों की नींद को और भी अधिक गहरा करने में सहायता दी थी। यों भी इस काफिले के लोगों के लिए नदी के प्रपात की संगीतमय आवाज अपरिचित नहीं थी।

जीमूत अभी किशोरावस्था में था। दूसरे दिन के प्रातः बहुत देर तक उसकी नींद नहीं टूटी। किसीने उसे जगाया भी नहीं। पर पास ही से सुनाई देनेवाले प्रातःकालीन संगीत के प्रभाव से एकाएक जीमूत की नींद टूटी तो वह जैसे आनन्द-विभोर हो उठा। ऐसा सुन्दर दृश्य उसने अपने जीवन में आज तक और कभी न देखा था।

जीमूत ने देखा, पूर्व की ओर कुछ ही दूरी पर ऊंचा पर्वत है, जिसके ऊपर का आकाश प्रभातकालीन लालिमा से पुता-सा हुआ है। सम्पूर्ण पर्वत पर एक सघन वन व्याप्त है। काफी दूरी पर एक बहुत बड़ा जल-प्रपात इस पर्वत के एक भाग से गिरता हुआ दिखाई दे रहा है। जीमूत जिस टीले के शिखर पर विद्यमान मैदान में खड़ा था, वह सम्पूर्ण मैदान हरे-भरे घास के अतिरिक्त नीले, पीले और लाल छोटे-बड़े फूलों से जैसे ढका-सा पड़ा था। अचानक एक अत्यन्त मधुर सम्मिलित गान जीमूत के कानों में पड़ा। जिधर से यह संगीत सुनाई दिया था, उधर जीमूत ने देखा कि टीले के एक निचान पर एक अत्यन्त सुन्दर जलधारा बह रही है। उसी जलधारा के निकट कुछ आर्यकन्याएं वेदमन्त्रों का गान कर रही हैं। जीमूत जैसे रस्सी से खिंचा उस ओर चल पड़ा।

पास पहुंचकर जीमूत ने सुना, आर्यकन्याएं गा रही थीं—

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाउ
यस्येमा प्रदिशा दीर्घ बाहु कस्मै देवाय हविशा विधेम।[1]

(ऋग्वेद)

१. जिसकी महिमा बरफ से ढंके ये ऊंचे पर्वत सुनाते हैं, समुद्र निरन्तर जिसके गीत गाता है, ये फैली हुई दिशाएं और उपदिशाएं जिसकी दीर्घ बाहुएं हैं—उस परमात्मा के किस-किस रूप की मैं आराधना करूं?

उन आर्यकन्याओं के साथ पंक्ति बांधे कितने ही पुरुष खड़े थे। जीमूत भी उन्हींमें सम्मिलित हो गया। वह भी साथ ही साथ गाने लगा।

प्रार्थना चलती रही और आर्यकन्याओं ने गाया—

> एतावानस्य महिमा अतोज्यायांश्च पूरुषः
> पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं भुवि।[१]
>
> (ऋग्वेद)

जीमूत ने अचानक अनुभव किया कि आज इस प्रभातकाल में एका-एक वह किशोर से युवा बन गया है। उसने जैसे उक्त वेदमन्त्रों के शब्दों का ही गान नहीं किया, वह उनके अर्थ को भी पूरी तरह हृदयंगम कर गया। एक नई और अननुभूत प्रसन्नता से उसका अन्तःकरण जैसे आप्लावित हो उठा।

अचानक जीमूत ने पहचाना, गानेवाली लड़कियों में सावित्री भी है, जिसे वह बचपन से जानता है। जीमूत ने निकट से देखा और अचानक अनुभव किया कि सावित्री कितनी सुन्दर और आकर्षक है! मुकुलित रक्तकमल-सी सुन्दर देह, प्रभातकालीन आकाश के समान आकर्षक चेहरा, ऊंचा कद और सुगठित शरीर। इस नई अनुभूति से जीमूत का हृदय एक अनिर्वचनीय और अननुभूत रोमांच से भर आया। आसपास की दुनिया जैसे एकाएक स्वर्गीय सौन्दर्य से पूर्ण प्रतीत होने लगी। नीचे की हरी-भरी पृथ्वी, ऊपर का नीलाकाश, सामने का श्वेत जलप्रपात और सघन नीलिमापूर्ण पर्वत-शिखर, निकट के श्यामल वन—ये सब जीमूत को और भी अधिक आकर्षक दिखाई देने लगे। एकाएक जीमूत को अनुभव हुआ, जैसे प्रकृति के इस सुन्दर रूप को वह अनन्त युगों से पहचानता है। जैसे वह स्वयं इन्हींका एक छोटा-सा अंश है और सबसे बढ़कर जैसे

---

१. यह सब तो उस महान परमात्मा की महिमा का वर्णन है, स्वयं वह परमात्मा तो इसकी अपेक्षा भी कहीं अधिक बड़ा है। यह सम्पूर्ण विश्व तो उसका एक पैर मात्र है, उसके बाकी तीन पैर आकाश में न जाने कहां तक फैले हुए हैं।

सावित्री को वह जन्म-जन्मान्तर से पहचानता और जानता है और वह उसकी चिरसंगिनी है। सावित्री उसीकी है, मात्र उसीकी।

चुम्बक से खिंचा-सा जीमूत सावित्री की ओर बढ़ता चला गया। यहां तक कि धीरे-धीरे वह सावित्री की दाहिनी ओर जा खड़ा हुआ। उन दिनों आर्यों में किशोर-किशोरियां खुले रूप में एक दूसरे से मिलते-जुलते और बातचीत करते थे। जीमूत के इस कार्य की ओर किसीका ध्यान भी नहीं गया। ध्यान गया तो केवल सावित्री का। तन्मयता से वेदमन्त्र गाते हुए सावित्री ने एकाएक जीमूत की ओर देखा। क्षण भर के लिए एक नवयुवक और एक नवयुवती का पवित्रतम दृष्टि-विनिमय हुआ और जैसे उसी एक दृष्टि में वे दोनों एक दूसरे को अपना-अपना पूरा इतिहास सुना गए। अनुराग, निवेदन, स्वीकृति, आत्मार्पण—सभी कुछ इसी एक ही दृष्टि-विनिमय में हो गया।

और इस प्रार्थना के अन्त में मातृभूमि की प्रशंसा में इन दोनों सद्योजात नवयुवक और नवयुवती ने एकसाथ अत्यन्त मधुर स्वर में गाया—

सितासिते सरिते यत्र संगथे तत्र लुप्तासौ दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीराः ते जनासौ अमृतत्वं भजन्ते॥[1]

(ऋग्वेद)

उस जमाने में भी, जब मनुष्य का जीवन आज की अपेक्षा बहुत अधिक उन्मुक्त और नैसर्गिक था, प्रीति छिपाए नहीं छिपती थी। कुछ ही दिनों में यह बात सम्पूर्ण आर्य-काफिले में चर्चा का विषय बन गई कि जीमूत और सावित्री एक दूसरे को चाहने लगे हैं। यों उन दिनों इच्छा-विवाह बुरा नहीं माना जाता था। प्रतिलोम विवाह की प्रथा भी प्रचलित

१. हमारे देश में जहां काली और सफेद नदियों का संगम है, वहां ज्ञानधारा में स्नान करनेवाले व्यक्ति दिव्यता को प्राप्त करते हैं। जो धीर पुरुष इस देश में मरते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

थी। पर इस मामले में कठिनाई यह थी कि सावित्री एक ब्रह्मज्ञानी नैष्ठिक पुरोहित की पुत्री थी और जीमूत एक 'विश्' युवक (साधारण आर्यजन ; इसी 'विश्' से 'वैश्य' बना) था। यों पराक्रम और वीरता की दृष्टि से जीमूत के परिवार का उस सम्पूर्ण काफिले में असाधारण रौबदाब था, पर जीमूत के पिता को ज्ञात था कि आर्य जामदग्नि इस बात को कभी सहन नहीं करेंगे कि उनकी कन्या एक साधारण 'विश्' युवक की अर्धांगिनी बने।

जब उस आर्य-काफिले में यह बात सब लोगों को मालूम हो गई कि जीमूत और सावित्री एक दूसरे को चाहने लगे हैं तो इस खबर से किसीको आश्चर्य नहीं हुआ। लोगों की धारणा बनी कि जैसे वे दोनों एक दूसरे के लिए ही बनाए गए हैं। उन दिनों आर्यों में जात-पांत का प्रारम्भ नहीं हुआ था, पर समाज में कुछ स्तर अवश्य बन गए थे। साधारण आर्यजन 'विश्' कहलाते थे, पर ब्रह्मज्ञानी पुरोहित अपने को 'विशों' से उच्च समझने लगे थे। फिर भी साधारणतः विवाह के सम्बन्ध में अधिक कैद नहीं थी।

जो बात सारा कबीला जानता था, वही बात सावित्री के ब्रह्मज्ञानी और कर्मकाण्डी पिता जामदग्नि को ज्ञात नहीं थी। वे सारा दिन अपने वैदिक कर्मकाण्डों में व्यस्त रहते और लोगों से मिलने-जुलने में उन्हें ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थी। सांसारिक चर्चाओं से वे यों भी सदा बेखबर रहते थे।

एक प्रभात जीमूत और सावित्री उन्मुक्त भाव से झरने के स्वच्छ जल में नहाए। उसके बाद युवती सावित्री एक चट्टान पर टांगें फैलाकर बैठ गई और युवक जीमूत रंग-बिरंगे फूलों से उसका शृंगार करने लगा। अचानक ऋषि जामदग्नि उधर आ निकले। अपनी पुत्री को एक युवक के साथ इस तरह की क्रीड़ा करते हुए देखकर वह सन्न-से रह गए। सावित्री का पुष्ट शरीर देखकर यह अनुभूति भी उन्हें पहली बार हुई कि उनकी बेटी अब युवती हो गई है। ऋषि बहुत गम्भीर हो गए, पर उन

दोनों ने मुस्कराकर और पूरी हार्दिकता से ऋषि का स्वागत किया। पिता को खिन्न पाकर बेटी ने कहा, 'आप किसी तरह का दुर्भाव अपने मन में न लाएं पिताजी, हम दोनों ने विवाह करने का निश्चय कर लिया है।'

ऋषि जामदग्नि के लिए यह एकदम अप्रत्याशित था। उन्होंने पूरी शान्ति से यह फतवा दे दिया कि यह असम्भव है। क्षण भर रुककर उन्होंने यहां तक कह डाला कि, 'मेरे जीते जी इस सम्बन्ध की कल्पना भी नहीं की जा सकती।' सावित्री और जीमूत स्तब्ध रह गए और जामदग्नि अपनी बेटी को साथ लेकर चलते बने।

पर वास्तव में स्थिति ऋषि जामदग्नि के हाथ में आ ही नहीं पाई। और तीन दिनों में पिता की अनुमति के बिना सावित्री ने जीमूत से विवाह कर लिया। दोनों का ख्याल था कि जब इस तरह के विवाहों की प्रथा आर्यों में प्रचलित है, तो ऋषि जामदग्नि भी कुछ ही दिनों बाद स्वयं क्रोध त्यागकर उन्हें अपना आशीर्वाद देंगे।

शायद सावित्री अपने पिता को उतना ही कम समझ पाई थी, जितना कम आज की पुत्रियां अपने पिताओं को समझ पाती हैं या आज के पिता जितना कम अपनी पुत्रियों को समझ पाते हैं। अब तक तो यह एक घरेलू प्रश्न ही था, पर बेटी के विवाह का समाचार प्राप्त होते ही जब ऋषि जामदग्नि ने आमरण उपवास करने की घोषणा कर दी तो सम्पूर्ण आर्य-काफिले में एक भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ।

पहले-पहल इस समाचार से आर्य-काफिले में असाधारण व्यग्रता और सनसनी फैली। उसके बाद विभिन्न परिवारों के प्रमुख आर्य वृद्धों ने ऋषि जामदग्नि को समझाने का प्रयत्न किया। पर वे टस से मस न हुए। वे लगभग मौनव्रत धारण किए हुए थे। उनके चेहरे का भाव एकदम शान्त था। अब, जो आदमी एकदम चुप्पी साध ले, उसे समझाया भी किस तरह जा सकता है? अपने से भी बड़े ब्रह्मवेत्ताओं और वृद्धों के समझाने पर वे इस बात के लिए तो तैयार हो गए कि यदि सावित्री

और जीमूत उनके पास आएं, तब वे उन्हें आशीर्वाद दे देंगे। पर वे अपने इस निश्चय पर निरन्तर डटे रहे कि अब वे अपने वर्तमान शरीर का त्याग अवश्य करेंगे। उन्होंने सावित्री और जीमूत को स्पष्ट रूप से कह दिया था कि उनके जीते जी वे परस्पर विवाह नहीं कर पाएंगे। अब अगर उन्होंने विवाह कर लिया है तो इसपर तो उनका बस नहीं रहा। ऋषि जामदग्नि के हाथ इतना ही बच रहा है कि इस देह का त्याग कर अपना प्रण निबाहें। यह बात उन्हें एक ईश्वरीय सन्देश प्रतीत हो रही थी और हजार प्रयत्न करके भी कोई उन्हें उनके निश्चय से विचलित नहीं कर पाया।

तिल-तिल करके ऋषि जामदग्नि का शरीर दग्ध होने लगा। उसी अनुपात में आर्य-शिविर में चिन्ता और मनोमालिन्य भी बढ़ने लगा। शिविर के अधिकांश आर्य 'विश्' थे, ब्रह्मवेत्ता पुरोहितों के प्रति उन्हें श्रद्धा थी, पर बहुत-से आर्यजन यह अनुभव करने लगे कि यदि ब्रह्मवेत्ता समाज उनसे इतनी घृणा करता है, तो वे क्यों उक्त समाज के अंग बने रहें। पहले यह धारणा दबे रूप में उठी, पर धीरे-धीरे जीमूत के पिता के नेतृत्व में यह धारणा विश् समाज के एक महत्त्वपूर्ण भाग की हार्दिक धारणा बन गई। उधर आर्य विश् जनता में भी ब्रह्मवेत्ताओं के श्रद्धालुओं का अभाव नहीं था। उनकी यह धारणा प्रबल से प्रबलतर बनती गई कि जीमूत के परिवार ने ऋषि जामदग्नि पर अक्षम्य अत्याचार किया है।

क्रमश: यह बड़ा आर्य काफिला दो परस्परविरोधी शिविरों में बंटने लगा।

उधर ऋषि जामदग्नि मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी भौतिक देह जिस अनुपात से क्षीण होती जा रही थी, उनका आत्मतेज उसी अनुपात से बढ़ता चला जा रहा था। उन्हें घेरकर प्रातः-सन्ध्या बीसियों ब्रह्मवेत्ता वेदमंत्रों का पाठ किया करते थे और उनके चारों ओर आर्य भक्तों का जमघट लगा रहता था, जो पूरी तरह शान्त रहते थे।

और एक दिन आया, जब ऋषि जामदग्नि ने अपनी भौतिक देह का त्याग कर दिया।

चिनगारी बढ़ते-बढ़ते दावाग्नि बन गई और यह विशाल आर्य-काफिला लगभग समान शक्ति के दो शिविरों में विभक्त हो गया। दो ऐसे शिविर, जो अब एक दूसरे के खून के प्यासे थे। बड़े से बड़े ब्रह्मवेत्ता भी घर की इस आग को बुझाने में सफल नहीं हो पाए।

एक दिन के प्रात: जीमूत के पिता की देखरेख में काफिले की आधी जनता उसी राह वापस लौट चली, जिस राह वह इस सुन्दर स्थान पर पहुंची थी। ऋषि जामदग्नि के बलिदान के बाद इस स्थान पर किसी तरह का रक्तपात तो क्या उपद्रव करना भी उन्हें सह्य नहीं था।

क्रमश: उक्त विशालकाय आर्य-काफिला पंचनद तथा हिमालय के राज्यों में विभक्त हो गया। हिमालय से उतरकर जीमूत के पिता के नेतृत्व में चला काफिला रेगिस्तान की ओर न जाकर पंचनद के सुरम्य और उपजाऊ मैदानों में चला गया और वहां उसने एक नये राज्य का श्रीगणेश किया। हिमालय और पंचनद ये दोनों आर्यराज्य उस समय तक विशालकाय जंगलों से भरे पड़े थे, इससे दोनों राज्यों में खुलकर लड़ाई होने का तो अधिक अवसर नहीं था, फिर भी दोनों राज्यों में परस्पर गहरा और स्पष्ट वैमनस्य विद्यमान था और वे एक दूसरे को हानि पहुंचाने से नहीं चूकते थे।

समय बीतता गया और पूर्ण युवा होकर जीमूत अपने पक्ष का प्रमुख सेनानी बन गया। वह शक्तिशाली होने के साथ असाधारण वीर भी था। उसपर युद्ध-कौशल में वह अत्यन्त निपुण था। सबसे बढ़कर इस रुधिरसिक्त नाटक का वही प्रमुख सूत्रधार था। ऋषि जामदग्नि के देहावसान से सावित्री को और उसे भारी चोट पहुंची थी, पर जिस तरह इस दुर्घटना को तूल देकर अगले-पिछले वैमनस्य निकालने का साधन बना लिया गया था, उससे जीमूत को भारी ग्लानि हुई थी और उसमें प्रति-

हिंसा की भावना बहुत प्रबल हो उठी थी।

और एक दिन दोनों राज्यों में खुलकर युद्ध शुरू हो गया। भारत के इतिहास का प्रथम राजनीतिक और सामाजिक युद्ध। ऐसा युद्ध, जिसमें एक आर्य दूसरे आर्य के खून से भूमि का अभिसिंचन करने लगा।

भाले, बरछे, तीर और पत्थरों से होनेवाला यह युद्ध शायद बहुत समय तक चलता यदि जीमूत अपने अनोखे रणकौशल से शत्रु-सेना को दोनों ओर से घेरकर पराजय स्वीकार करने को बाधित न कर देता।

हिमालय के आर्यराज्य की पराजय से युद्ध तो शान्त हो गया, पर आर्यों के मन में शान्ति नहीं थी। पराजित आर्य पराजय की ग्लानि से जल रहे थे और विजेता आर्य विजयगर्व में चूर होकर बाकी सबको हेय समझने लगे थे। ऋषि जामदग्नि की पुत्री इस परिस्थिति से बहुत ही खिन्न थी। स्वयं जीमूत भी बहुत सन्तुष्ट नहीं था। अन्तःकरण का यह असन्तोष शान्त करने के लिए उसने एक मौलिक उपाय खोज निकाला। अपने दो-चार विश्वस्त साथियों के साथ वेष बदलकर वह पुनः हिमालय की यात्रा के लिए चल दिया। जीमूत की इस यात्रा का वास्तविक उद्देश्य यह था कि वह शत्रु-पक्ष के हृदय को भी जीतने का प्रयत्न करे, ताकि सभी आर्यों में फिर से भ्रातृभाव जागरित हो सके। इस उद्देश्य के लिए वह सभी कष्ट सहने को तैयार था। पर पिछले वर्षों के युद्ध से यह लाभ अवश्य हुआ था कि पंचनद और हिमालय के बीच अब एक मार्ग-सा बन गया था, जहां हिंसक वन्य पशुओं और सरीसृपों का उतना भय नहीं रहा था।

एक दिन जीमूत ने पाया कि वह उसी मैदान में पहुंच गया है, जहां बरसों पूर्व एकाएक उसने अनुभव किया था कि वह किशोर से युवा बन गया है। सैनिक जीमूत भाव-जगत् में विचरण करने लगा। आर्यों का वह विशाल परिवार, उसके साहसपूर्ण कारनामे, आर्यकन्याओं का मधुर संगीत और ऋषि जामदग्नि। भावाविष्ट की सी दशा में जीमूत ने वह रात काटी। इतना उत्साह उसने बरसों से अनुभव नहीं किया था। वह

चाहता था कि दोस्त-दुश्मन सभी को गले लगाकर वह कहे कि हम भाई-भाई हैं।

दूसरे प्रातःकाल उसने पाया कि उस सुरम्य झरने के किनारे अब एक सुन्दर-सा गांव बस गया है। अपने साथियों को एक जगह प्रतीक्षा करने का आदेश देकर जीमूत उस गांव की ओर चल दिया। क्रमशः वह ग्राम-मन्दिर के निकट पहुंचा, जो झरने के ठीक किनारे पर था। पुराने ज़माने का कोई भी चिह्न जैसे वहां अब बाकी नहीं था। पर सहसा जीमूत के कानों में आज भी संगीत की आवाज़ सुनाई दी। उसने सुना आज भी वेदमन्त्रों का गान हो रहा है। पहले तो उसे भय हुआ कि यह शायद उसके मस्तिष्क की कल्पना है। पर ज़रा-सा आगे बढ़कर उसने साफ सुना कि वेद-मन्त्रों का गान तो हो रहा है, पर अन्तर केवल इतना ही है कि गानेवाली लड़कियां नहीं हैं, बल्कि युवक हैं। जीमूत ने पास पहुंचकर सुना—ओह यह तो युद्ध के सूक्तों का पाठ हो रहा है। मन्दिर के बाहर आंगन में अस्त्र-शस्त्रों के ढेर लगे हैं और उन्हें घेरकर अथर्ववेद के तीसरे सूक्त का पाठ किया जा रहा है। जीमूत अकेला था, उसे पहचाने जाने का भी भय नहीं था, इससे वह यह सब देखता-सुनता रहा। अचानक उसके कानों में पड़ा, आर्य युवक गा रहे थे—

'यो अस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
तं वो जम्भे दध्मः।'[१]

(अथर्ववेद)

जीमूत एकाएक चौंक गया। वाह, क्या खूब न्याय है! जो हमसे दुश्मनी करे वह भी मरे और हम जिससे दुश्मनी करें वह भी मरे! खूब! क्या कहना है! ऋग्वेदीय संस्कृति से आज की इस अथर्ववेदीय संस्कृति में हम आर्य कितनी उन्नति कर आए हैं!

---

१. जो हमसे द्वेष करता है, या जिससे हम द्वेष करते हैं, उसे हम तेरे जबड़ों में देते हैं।

जीमूत उलटे पांव लौट पड़ा। ऐसे आर्यों के हृदय को परिवर्तित करने का इरादा ही उसने छोड़ दिया। और जब अपने साथियों में पहुंचकर उसने एकाएक घोषणा की कि वह एक स्वार्थी आस्तिक की अपेक्षा न्याय-निष्ठ नास्तिक बनना अधिक पसन्द करता है, तो उसके साथियों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

सपना

अभी सूरज भी नहीं निकला था कि ग्रन्थी अरजनसिंह तेज़ी से चलकर सरदार अमरसिंह के घर पहुंचे। सरदार साहब छड़ी लेकर प्रातःकालीन सैर के लिए चलने ही वाले थे। ग्रन्थी साहब को देखकर उन्होंने पूछा, 'कोई खास बात है ग्रन्थी साहब ? आपको तकलीफ न हो तो आप भी मेरे साथ सैर करने चलें। राह में बातें होंगी।'

ग्रन्थी अरजनसिंह ने कहा, 'सैर तो हमेशा होती रहेगी। मैं आपसे बड़ी ज़रूरी बात कहने आया हूं भगतजी ! बात यह है कि वाहगुरु ने चाहा तो इन्हीं सरदियों में आपका यह गुरुद्वारा रावलपिंडी का सबसे बड़ा गुरुद्वारा बन जाएगा।'

इतना कहकर वे एक चारपाई पर बैठ गए।

सरदार अमरसिंह ने दुनिया देखी थी और इस तरह की आशापूर्ण भविष्यवाणियों की कीमत वे जानते थे। बाबू मुहल्ले की नई बस्ती के पास उन्होंने अपनी ज़मीन का एक अच्छा-खासा भाग इस गुरुद्वारे के लिए दिया था और एक सादा-सा कमरा भी अपने खर्च से बनवा दिया था। अरजनसिंह प्रारम्भ से इस गुरुद्वारे के ग्रन्थी थे और इन्हींकी प्रेरणा से सरदार अमरसिंह ने यह गुरुद्वारा बनवाया था। सरदार अमरसिंह ने कहा, 'वाहगुरु की मरजी होती, तो अब तक यहां सोने की चादर से मढ़ा ऊंचा कलश बन गया होता। सच बात तो यह है ग्रन्थीजी कि धर्मस्थल भी दूकान की तरह होते हैं। देखिए न, राजा बाज़ार के बनवासी स्टोर में इतनी भीड़ रहती है कि ग्राहकों को घंटों तक खड़े रहना पड़ता

है और उसके साथवाले रतन स्टोर में दूकान के कर्मचारी सारा दिन मक्खियां मारा करते हैं। यही हाल धर्म-स्थानों का भी है। जहां लोगों की श्रद्धा उमड़ पड़ी, वही तीर्थ बन गया।'

ग्रन्थी महाशय जानते थे कि सरदार अमरसिंह जब बोलने पर आ जाएं तो उनकी गाड़ी रुकती नहीं। इससे बीच ही में टोककर उन्होंने कहा, 'आप बिलकुल ठीक फरमा रहे हैं, सरदार साहब। लोग तो बिलकुल भेड़ की तरह होते हैं। जिधर एक भेड़ गई, बाकी सब उसके ही पीछे हो लीं। देखिए न, माई बन्नी का गुरुद्वारा यहां से दो मील से भी ऊपर होगा। फिर भी लोग पैदल चलकर वहां पहुंचेंगे। परन्तु घर की गंगा की ओर कोई ध्यान नहीं देता।'

ग्रन्थी महाशय से मात खाकर सरदार अमरसिंह का बोलने का उत्साह मन्द पड़ गया। उन्होंने धीरे से इतना ही कहा, 'आप चिन्ता न कीजिए ग्रन्थीजी। मैंने किसी लालच से यह गुरुद्वारा नहीं बनवाया। फिर मैं बनवानेवाला हूं ही कौन! यह सब तो वाहगुरुजी की मरजी है। जब तक उनका आशीर्वाद रहेगा, यह गुरुद्वारा बन्द नहीं होगा। आप अपना काम करते जाइए।'

ग्रन्थीजी ने ज़रा गम्भीर होकर कहा, 'कल रात सपने में मुझे परम अकालपुरुष के दर्शन हुए हैं, सरदार साहब। उन्हींका सन्देश लेकर मैं आपके पास आया हूं!'

अब सरदार अमरसिंह भी एकाएक गम्भीर हो गए। उन्होंने पूछा, 'क्या सन्देश है, परम अकालपुरुष का?'

'परम अकालपुरुष ने फरमाया है कि अब से ठीक तीस दिनों के बाद जो रविवार आता है, उसके प्रातःकाल आठ बजे गुरु ग्रन्थसाहब का पाठ करते-करते मेरा देहान्त हो जाएगा।'

सरदार अमरसिंह चौकन्ने हो गए।

कहीं यह ग्रन्थी मज़ाक तो नहीं कर रहा? मगर ग्रन्थी अरजनसिंह इस वक्त इतने गम्भीर दिखाई दे रहे थे कि जितने वे इस जीवन में

और कभी न हुए होंगे। क्षण भर बड़े ध्यान से ग्रन्थी की ओर देखते रह-कर सरदार अमरसिंह ने कहा, 'आप होश में हैं ग्रन्थी साहब।'

'जी हां ! मैं पूरे होश में हूं। और मुझे मालूम है कि मेरे जीवन के अब सिर्फ तीस दिन बाकी हैं। इन तीस दिनों में जितनी बार मुमकिन हो, उतनी बार मैं ग्रन्थसाहब का अखंड पाठ करना चाहता हूं।'

सरदार अमरसिंह ने कहा, 'बहुत अच्छा। ज़रूर ऐसा ही होगा। आप चाहे जैसा प्रोग्राम बना लीजिए। खर्च की चिन्ता मत कीजिए। आज शहर भर में मैं इस बात की मुनादी करवा देता हूं। कल अमृतवेला से हमारे इस गुरुद्वारे में अखंड पाठ शुरू होगा।'

और सांझ होते न होते ग्रन्थी अरजनसिंह के इस सपने की चर्चा सारे रावलपिंडी शहर में थी। कौन कहता है कि इस ज़माने में चमत्कार नहीं होता। स्वयं अपनी मृत्यु के बारे में भविष्यवाणी कर सकना कितना बड़ा चमत्कार है !

अगले दिन के प्रातःकाल बाबू मुहल्ले के उस छोटे-से गुरुद्वारे में इतनी भीड़ थी कि जैसे कोई महापर्व मनाया जा रहा हो। सरदार अमरसिंह का इन्तज़ाम बहुत अच्छा था। नवम्बर का चौथा सप्ताह चल रहा था, इससे रावलपिंडी में सर्दी बहुत बढ़ गई थी। गुरुद्वारे में घास से मढ़ा जो मैदान है, उसे एक साफ-सुथरे शामियाने से ढक दिया गया था। चारों ओर कनातें लगा दी गई थीं, और नीचे भक्तों के लिए नई दरियां बिछाई गई थीं। शामियाने का फाटक केले के पत्तों से बनाया गया था और उसे सब जगह फूलों और कागज़ों की मालाओं से सजा दिया गया था।

इस शामियाने के एक ओर लाल मखमल से मढ़े एक ऊंचे तख्तपोश पर गुरु ग्रन्थसाहब के सामने ग्रन्थी अरजनसिंह विराजमान थे। स्वच्छ सफेद वस्त्र उनके ऊंचे कसरती जिस्म पर खूब फब रहे थे। उनके गले में लाल गुलाब के फूलों की एक माला थी। सारा मण्डप दर्शनार्थियों से खचाखच भरा हुआ था। स्त्रियां एक तरफ बैठी थीं, पुरुष दूसरी तरफ।

श्रद्धालु भक्त आते, गुरु ग्रन्थसाहब तथा ग्रन्थी अरजनसिंह के सामने अपने सिर झुकाते और जो कुछ बन पड़ता, भेंट चढ़ाते।

इस वेदी के नीचे पांच-छः रागी बैठे थे, जो बहुत मधुर स्वर में ग्रन्थ-साहब का पाठ कर रहे थे। भक्ति का यह वातावरण सभी दर्शकों के हृदयों पर गहरा प्रभाव डालता था।

दुपहर होते न होते भीड़ इतनी बढ़ गई कि चारों ओर की कनातें भी उतार देनी पड़ीं। दिन भर में हज़ारों भक्तों ने ग्रन्थी अरजनसिंह के दर्शन किए और इस गुरुद्वारे की शानदार इमारत बनाने के लिए पहले ही दिन हज़ारों रुपया आप से आप जमा हो गया।

ग्रन्थी अरजनसिंह के चेहरे पर एक तरह की दिव्यता पहले ही दिन दिखलाई देने लगी। औरों की बात तो जाने दीजिए, सरदार अमरसिंह तक हैरान थे कि जिस ग्रन्थी को वे इतने वर्षों से जानते हैं, वह आज एकाएक सचमुच इतना महान किस तरह बन गया। ग्रन्थी अरजनसिंह के गले में आज खास तरह की मिठास और खास तरह का प्रभाव आ गया था। उनकी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियां जैसे परम अकालपुरुष के सामने एकाग्र हो गई हैं। दूध और थोड़े-से फलों के अतिरिक्त उन्होंने दिन भर में और कुछ भी आहार नहीं लिया। सरदार अमरसिंह ने उनसे अनुरोध किया कि भक्तों का सब चढ़ावा तो गुरुद्वारे के लिए है, पर आप मेरी जायदाद में से चाहे जितना रुपया अपने वारिसों के लिए लिखा लीजिए। पर एक सच्चे सन्त के समान ग्रन्थी अरजनसिंह ने कहा कि मुझे एक पैसे की भी ज़रूरत नहीं है। आपमें जितनी श्रद्धा हो, उतना धन आप भी परम अकालपुरुष के नाम पर इसी गुरुद्वारे को दे दीजिएगा।

गुरुद्वारे में हर समय एक बड़ा-सा मेला लगा रहने लगा। कनातें तो पहले ही दिन हटा दी गई थीं। दो-तीन दिनों में शामियाना भी उतार देना पड़ा, ताकि आसपास के मकानों की छतों पर से भी भक्त लोग ग्रन्थी अरजनसिंह के दर्शन कर सकें। रावलपिंडी में सभी जगह इसी चमत्कार की चर्चा थी। हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाई सब भेदभाव भूल-

कर इस विचित्र करिश्मे की चर्चा करते थे। नास्तिक लोग कहते थे कि यह सब ढकोसला है। मगर जनता के बहुमत का कहना था कि जो चीज़ कुछ ही दिनों में सामने आनेवाली है, उसके बारे में कोई इस तरह का झूठा दावा कर ही कैसे सकता है ? सबसे बढ़कर स्वयं ग्रन्थी अरजनसिंह को अपने सपने पर अगाध विश्वास था। इस सपने ने उनके जीवन में सचमुच चमत्कार कर दिया था। एक ही रात में वे साधारण पुरुष से साधक सन्त बन गए थे। उनके चेहरे पर एक विशेष तरह का निर्मोह और सरलता का भाव आ गया था, जिसे देखकर आपसे आप श्रद्धा उत्पन्न होती थी।

रावलपिंडी के इस चमत्कार की चर्चा अब दूर-दूर तक फैलने लगी। आसपास के गांवों से भी सैकड़ों-हज़ारों दर्शनार्थी ग्रन्थी अरजनसिंह के दर्शनों के लिए आने लगे। गुरुद्वारे के चारों ओर की सड़कें बाजारों के रूप में परिणत हो गईं। एक बड़ा मेला वहां दिन-रात लगा रहने लगा। उत्साही युवकों ने एक सदाव्रत भी जारी कर दिया, वहां जो चाहे भोजन कर सकता था।

रावलपिंडी के पुलिस सुपरिंटेंडेंट का काम इस मेले ने यों भी बढ़ा दिया था। अब उन्हें एक और चिन्ता सवार हुई। वह यह कि इक्कीस दिसम्बर की प्रातः जब सन्त की भविष्यवाणी पूरी होगी, तो उसके विमान का जुलूस किस तरह निकाला जाएगा। उसी दिन उन्होंने रावलपिंडी के गण्य-मान्य नागरिकों की एक मीटिंग बुलाई। सरदार अमरसिंह की सलाह पर यह निश्चय किया गया कि विमान का शानदार जुलूस निकालकर उसे पंजा साहब ले जाया जाए और वहीं अन्तिम संस्कार किया जाए।

अगले ही दिन लोगों को मालूम हो गया कि इक्कीस दिसम्बर रविवार के प्रातःकाल दस बजे सन्त अरजनसिंह के विमान का जुलूस बाबू मुहल्ले के गुरुद्वारे से चलेगा और सायंकाल चार बजे अठारह मील दूर पंजा साहब पहुंचेगा। न सिर्फ रावलपिंडी में बल्कि अठारह मील

तक के उस प्रदेश में जुलूस को अधिक से अधिक शानदार बनाने की तैयारी शुरू हो गई।

इसी तरह दिन बीतते गए और आखिर बीस दिसम्बर की ऐतिहासिक रात आ पहुंची। रावलपिंडी में यों भी सरदी बहुत होती है, पर उस साल तो जाड़े की हद हो गई थी। लोग सुबह उठते थे तो गन्दे पानी की नालियां तक जमी हुई मिलती थीं। बीस दिसम्बर की सांझ से ही हज़ारों आदमी गुरुद्वारे के सहन में और आसपास की छतों पर जमा हो गए। ग्रन्थी को भीड़ के उत्पात से बचाने के लिए सादे कपड़ों में कुछ हथियारबन्द सिपाही भी सुपरिंटेंडेंट साहब ने भेज दिए थे। फिर भी भीड़ पर नियन्त्रण रखना मुश्किल हो रहा था। यही गनीमत थी कि इतने लोगों के साथ बैठने से वहां के वातावरण में वह उष्णता उत्पन्न हो गई थी कि स्त्रियां तक भी रात भर खुले आसमान के नीचे बैठ सकें।

जब गुरुद्वारे में ज़रा-सा भी स्थान बाकी नहीं रहा, तो अठारह मील लम्बे रास्ते के दोनों ओर अच्छी जगह की तलाश में भक्तों ने बैठना प्रारम्भ किया। यहां खुले स्थान के नीचे रात नहीं काटी जा सकती थी, इसलिए हज़ारों लोग अपनी रजाइयां और कम्बल लपेटकर इस सौभाग्यशाली मार्ग के दोनों ओर बैठने लगे। जगह-जगह पर तोरण बनाए गए और वन्दनवारों से उन्हें सजाया गया। मार्ग की इस बड़ी भीड़ में हिन्दू, सिख, मुसलमान सभी शामिल थे।

गुरुद्वारे में एकत्र सारी भीड़ रात भर धार्मिक गीत गाती रही और भक्ति का दरिया-सा बहता रहा। लोगों की उत्सुकता प्रतिक्षण बढ़ती गई और आखिर वह समय आ पहुंचा जब मुर्ग बांगें देने लगते हैं। सूर्योदय में अब कुछ ही मिनट बाकी बचे थे।

पिछले एक महीने में ग्रन्थी अरजनसिंह का कायाकल्प तो नहीं, परन्तु मनस्कल्प अवश्य हो गया था। क्रमशः उनकी वृत्तियां पूरी तरह अन्तर्मुखी बन गई थीं। एक विशेष प्रकार की शांति उनके चेहरे पर हर समय दिखाई देती रही थी। अब इस भाग्यपूर्ण प्रभात की अनुभूति होने

पर पहली बार जैसे कुछ घबराहट उनके चेहरे पर दिखलाई दी। स्वप्न के अनुसार उनकी मृत्यु में अब कुछ ही मिनट बच रहे हैं, पर उन्हें किसी प्रकार भी मृत्यु अपने समीप आती प्रतीत नहीं हो रही थी।

जनता का उत्साह अब चरम सीमा तक पहुंच गया था। बीच-बीच में नारे भी लगते जाते थे। लाउडस्पीकर से समय की सूचना भी नियमित रूप से दी जा रही थी। आखिरकार घोषणा हुई कि सूर्योदय में अब केवल तीन ही मिनट बाकी हैं। एक विशेष तरह की उत्तेजना चारों ओर छा गई और वह अपार जनसमूह आप से आप उठकर खड़ा हो गया। अब घोषणा की गई कि इस पुण्य मुहूर्त में सब लोग चुप रहें, केवल तीन-चार रागी ग्रन्थसाहब के शब्द गाएंगे। सब लोग मन ही मन उन्हें दुहराएं। इस सूचना का असर तत्काल हुआ। उस बड़ी भीड़ में गहरा सन्नाटा छा गया।

लाउडस्पीकर के पास एक बड़ी घड़ी रख दी गई थी, जिसकी टिक-टिक धार्मिक शब्दों के गान के साथ बहुत अर्थपूर्ण प्रतीत हो रही थी। समय किस तरह बीतता है, इसकी साक्षात् अनुभूति जैसे वह भारी भीड़ एकसाथ कर रही थी।

ग्रन्थी अरजनसिंह सतर्क होकर चुपचाप बैठे थे कि घड़ियाल ने उस सम्पूर्ण जनसमूह को निश्चित मुहूर्त की सूचना दी।

ग्रन्थी अरजनसिंह ने प्राणपण से चाहा कि उनके प्राण उसी समय निकल जाएं, मगर कम्बख्त मौत भी आदमी की इच्छा से कभी नहीं आती। घड़ी मुहूर्त से आगे निकल गई और ग्रन्थी अरजनसिंह उसी तरह जीवित बैठे रहे।

लोगों ने समझा कि शायद घड़ी गलत है। कुछ लोगों के हृदयों में शंका भी उठने लगी—इसी उलझन में पांच मिनट और भी निकल गए। मकान की छतों पर खड़े सैकड़ों-हजारों लोगों ने देखा कि सूरज निकल आया है, पर ग्रन्थी साहब अपने मसनद के सहारे उसी तरह जीवित बैठे हैं।

परिस्थिति एकाएक बहुत विचित्र हो गई। यह एण्टी-क्लाइमैक्स, ऊंचे बुखार के एकाएक उतर जाने के समान सिद्ध हुआ। पुलिस के अफ-सर को भय हुआ कि कहीं लोग गुस्से में आकर बेचारे ग्रन्थी को सचमुच ही न मार डालें। अचानक किसीने चिल्लाकर कहा, 'हमें धोखा दिया गया है !' और उसी वक्त भीड़ में से गालियों की बौछार शुरू हो गई।

इस नाजुक मौके पर सरदार अमरसिंह का दिमाग काम आया, वे शीघ्रता से उठे और लाउडस्पीकर द्वारा उन्होंने जनता से कहना शुरू किया —'हम रावलपिंडी के नागरिक, सतगुरु के शुक्रगुज़ार हैं कि उन्होंने एक बड़े सन्त को हमारे बीच में कुछ और वक्त रहने का मौका दे दिया है। पन्थ का कौन-सा ऐसा सच्चा सेवक है, जो यह नहीं चाहता कि ग्रन्थी अरजनसिंह जैसा महात्मा अभी और हमारे बीच में रहे !'

सरदार अमरसिंह के इस भाषण के कारण रात भर की जगी जनता यह निश्चय शीघ्र नहीं कर पाई कि वह अपनी नाराजगी किस तरह प्रकट करे। भाषण अभी जारी था कि पुलिस के सादी वरदी वाले सिपाही ग्रन्थी अरजनसिंह को बड़ी शीघ्रता से गुरुद्वारे के भीतर ले गए और वहां से पिछले दरवाज़े द्वारा भक्तों की उस बौखलाई हुई बड़ी और बेमुरव्वत भीड़ से बहुत दूर !

दुआ

बात उन दिनों की है, जिन दिनों हिन्दोस्तान के राष्ट्र-देह की चीरा-फाड़ी के कारण खून की नदियां बह रही थीं। उन दिनों इन्सानों का बड़ा भाग एकाएक शैतान बन गया था। मौण्टगोमरी जिले के एक बड़े फार्म के एकाकी बंगले में चन्द्रपाल नित नई और एक से बढ़कर दूसरी दिल दहला देनेवाली खबरें सुनता था। उसे मालूम था कि उसके फार्म से सैकड़ों मील दूर तक चारों ओर महाभयंकर हत्याकाण्ड हो रहे हैं। उसे यह भी मालूम था कि उसकी ज़मींदारी के बहुत-से नौकर-चाकर और कार्यकर्ता अब उसके खून के प्यासे बन गए हैं। उसे यह भी ज्ञात था कि रेलगाड़ियों में सफर करना खतरनाक है और मोटरकार में सफर कर सकना असम्भव है। चन्द्रपाल के कुछ विश्वस्त मुज़ेरे अपनी हिफाजत में उसे इस इलाके से सुरक्षा-सीमा में पहुंचा आने को तैयार थे, पर चन्द्रपाल कुछ निश्चय ही न कर पा रहा था कि इन परिस्थितियों में वह क्या करे। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि उसकी प्यारी पत्नी, उसकी फूल के समान सुकुमारी पुत्री अपराजिता के साथ कोइटा गई हुई थी। कोइटा, जो मौण्टगोमरी से आठ सौ मील दूर, पश्चिमी पाकिस्तान के भी उत्तर-पश्चिमी किनारे पर है। इन परिस्थितियों में न चन्द्रपाल वहां पहुंच सकता है और न उसकी पत्नी ही मौण्टगोमरी तक आ सकती है। दिन बीतते जा रहे थे और चन्द्रपाल कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहा था।

कि एक दिन के प्रातःकाल चन्द्रपाल को एकाएक अनुभव हुआ—

उसे आज ही अपनी जमींदारी से चल देना चाहिए। तर्क से ऊपर की किसी अनुभूति ने उसे बता दिया कि जैसे शिव के प्रलयंकारी तांडव नृत्य की ध्वनि निकट आ रही है। बस, उसी वक्त उसने अपने चार विश्वस्त मुसलमान अनुचरों को बुलाया। उनकी संरक्षकता में वह पांच मील दूर, मौण्टगोमरी के रेलवे स्टेशन पर पहुंचा और दुपहर की ट्रेन से कसूर के लिए रवाना हो गया, जहां से भारत के लिए विशेष गाड़ियों का प्रबन्ध था।

ट्रेन मुसाफिरों से खचाखच भरी थी। सुरक्षा की दृष्टि ही से चन्द्रपाल यहां तीसरे दर्जे में बैठा। एक अजीब तरह का त्रास सब ओर छाया हुआ था। चन्द्रपाल पतलून और कोट पहने था। उसे देखकर यह कोई भी नहीं जान सकता था कि वह हिन्दू है या मुसलमान। उसके चारों अत्यन्त बलिष्ठ साथी स्पष्टतः मुसलमान जाट थे। डिब्बे में हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी धर्मों के यात्री थे और प्रत्येक स्टेशन पर हिन्दू और सिक्ख यात्री मन ही मन परमेश्वर या वाहगुरु को याद करने लगते थे। चन्द्रपाल को ज्ञात था कि रायविण्ड स्टेशन पर भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के सैनिक विद्यमान हैं और उसके बाद उसे कोई खतरा नहीं है।

मौण्टगोमरी से रायविण्ड लगभग अस्सी मील है। इस गाड़ी में बैठे-बैठे चन्द्रपाल को लगभग पन्द्रह घण्टे बीत गए, पर रायविण्ड नहीं आया। प्रभात के लगभग चार बजे थे। कृष्णपक्ष की अष्टमी का आधा चांद आसमान के मध्य में चमक रहा था। हवा में एक खास तरह की खुनकी थी और डिब्बे के भीतर भीड़ के सभी मुसाफिर अपनी-अपनी जगह बैठे ऊंघ रहे थे कि एकाएक गाड़ी की रफ्तार कम हुई, इंजन की तीन-चार तीखी-तीखी सीटियां सुनाई दीं और उसके बाद एक झटका-सा देकर गाड़ी खड़ी हो गई। इस धक्के से गाड़ी के अधिकांश मुसाफिर जाग गए। बियाबान जंगल में गाड़ी का एकाएक इस तरह रुक जाना चन्द्रपाल को एक असगुन के समान जान पड़ा और खिड़की से मुंह निकालकर उसने बाहर की ओर देखा।

कृष्णपक्ष की अष्टमी के चन्द्रमा के प्रकाश में चन्द्रपाल को इतना ही दिखाई दिया कि रेलवे लाइन से लगे हुए मक्का के ऊंचे-ऊंचे खेत जैसे हवा में हिल-से रहे हैं। उसके बाद उस ब्राह्ममुहूर्त में जिस तरह दिशा-प्रदिशाएं एकाएक 'अल्ला हो अकबर' के गगनभेदी नाद से गूंज उठीं, उसके सम्बन्ध में चन्द्रपाल किसी भी तरह यह समझ नहीं पाया कि इतना अचानक वह हो-हल्ला कहां से उठ खड़ा हुआ! मक्का के इन खेतों से सैकड़ों भयानक सूरतें मिनट भर में रेलगाड़ी के सब डिब्बों में चढ़ आईं।

सूर्योदय तक यह इकतरफा हत्याकाण्ड, अपहरण और बलात्कार चलता रहा। अपने चारों पहलवानों की संरक्षकता में निरुपाय-सा बैठा चन्द्रपाल जैसे बाधित होकर यह अत्यन्त भयानक काण्ड देखता रहा। सैकड़ों की संख्या में हिंदू और सिक्ख मारे गए। कितनी ही युवतियां अपहृत कर ली गईं। सभी आयु के स्त्री-पुरुषों के खून से रेलगाड़ी के डिब्बों की सीटें, फर्श, पायदान और उनके नीचे पटरी के दोनों ओर जमा-कर रखे गए गोलाकार छोटे-छोटे पत्थरों के ढेर बड़ी शीघ्रता से लाल होने लगे।

इस सब हो-हल्ले और हंगामे में निरुपाय-सा बैठा चन्द्रपाल किसी महाभयंकर दुःस्वप्न के समान नृशंसता और बर्बरता का यह नग्न नृत्य देखता रहा। उसके चार अनुचरों को देखकर सभी उसे पाकिस्तान सरकार का कोई बड़ा अफसर समझ रहे थे। उषाकाल की उस शान्त वेला में सैकड़ों स्त्री-पुरुषों का भयपूर्ण आर्तनाद, और जैसे उस आर्त-नाद की द्रावकता को दबा देने की इच्छा से किया गया 'अल्ला हो अकबर' का युद्धनाद—यह सब कुछ इस तरह का था, जिस तरह कोई हत्यारा किसी निरीह बालक की हत्या करने के उद्देश्य से शराब पीकर अपनी अनुभूति को दबाने की चेष्टा तो करे, पर उसमें भी वह नृशंस अनुभूति छिप न पाए।

पूरब दिशा में क्षितिज पर आग का एक बहुत बड़ा गोला

चमकने लगा, जिसके लाल-लाल प्रकाश में रेलगाड़ी के नर-रक्त से सने डिब्बे और भी अधिक भयंकर प्रतीत होने लगे। सूर्योदय के साथ ही साथ यात्रियों का सब माल-मता लूटकर और कितनी ही लड़कियों का अपहरण कर आततायियों ने रेलगाड़ी को आगे बढ़ने की छुट्टी दे दी।

चन्द्रपाल अब अपनी मातृभूमि भारत की गोद में पहुंच गया था।

दुपहर ढल गई थी, जब चन्द्रपाल की गाड़ी फीरोजपुर से रवाना हुई। पहले दर्जे के एक डिब्बे में अपने बन्द बिस्तरे के साथ ढासना लगाकर बैठा हुआ चन्द्रपाल खिड़की से बाहर की ओर देख रहा था। उसके विश्वस्त अनुचर उसे भारतीय सेना के एक दस्ते की सुरक्षा में छोड़कर वापस लौट गए थे। चन्द्रपाल आज़ाद हिंदुस्तान के आंचल में पहुंच तो गया था, पर उसका मन जैसे किसी भारी बोझ से दबा जा रहा था। प्रसन्नता की एक क्षीण रेखा तक भी उसमें नहीं थी। आज सुबह-सुबह जो महाभयंकर हत्याकाण्ड उसने अपनी आंखों से देखा था, उसने जैसे उसके प्राण तक को आतंकित कर दिया था! ओह, मनुष्य इतना पतित हो सकता है! सुबह से उसने न कुछ खाया था और न पिया था। किसी व्यक्ति से उसने कोई बातचीत तक नहीं की थी। यहां तक कि अपने उन स्वामिभक्त मुज़ेरों से भी वह कुछ कह-सुन नहीं पाया था। वातावरण में सभी ओर भय और त्रास व्याप्त था। साधारणतः मनुष्य भीड़ में अपने को सुरक्षित अनुभव करता है, पर चन्द्रपाल जैसे भीड़ से बचना चाहता था और इसीसे पहले दर्जे का टिकट खरीदकर इस डिब्बे में अकेला आकर बैठ गया था। इस गाड़ी में हिन्दू, सिख, मुसलमान सभी जमातों के यात्री थे। पर अन्तर इतना ही था कि यहां हिन्दू और सिख नहीं, अपितु मुसलमान घबराए हुए और भयभीत प्रतीत हो रहे थे। यों इस गाड़ी में बहुत अधिक भीड़ भी नहीं थी।

गाड़ी चली तो चन्द्रपाल को जैसे कुछ राहत-सी मिली। एक ठण्डी और लम्बी सांस उसके अन्तस्तल से फूटकर बाहर निकली। रेलगाड़ी के

चलने की आवाज़ जैसे उसे आज प्रभात के रोंगटे खड़े कर देनेवाले आर्त-नाद की प्रतिध्वनि-सी प्रतीत हो रही थी। चन्द्रपाल ने चाहा कि अपनी लाड़ली बेटी अप्पी की सरल मुस्कराहट और अपनी प्यारी पत्नी की याद से वह उस सबको दुःस्वप्न के समान भुला देने का प्रयत्न करे। उसने यह भी चाहा कि स्वाधीन भारत में अपने को नये सिरे से आबाद करने की चिन्ता सहेड़कर वह प्रभात के नज़ारे से नजात पा जाए। पर इस सब-में उसे सफलता नहीं मिली। रह-रहकर अत्यन्त असहाय रूप से मारे जाते हुए उन बच्चों और स्त्रियों के करुण क्रन्दन करते हुए विकृत चेहरे जैसे शत-शत गुना अधिक स्पष्ट होकर उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख आ उपस्थित होते थे।

गाड़ी चलती गई और धीरे-धीरे समय बीतने लगा। एकाएक प्रति-हिंसा की आग चन्द्रपाल के हृदय में सुलग उठी। न जाने इतने घण्टों के बाद उसे यह अनुभूति हुई कि वह अब हिन्दुस्तान में है और चाहे तो सुबह के हत्याकाण्ड का बदला ले सकता है। प्रतिहिंसा की इस भावना ने जैसे उसके सुन्न हो गए मस्तिष्क को गति दी और वह बदला लेने की योजनाएं बनाने लगा। उसके मानसिक नेत्रों ने देखा कि जो आततायी आज सुबह के हत्याकाण्ड में हत्यारे थे, उन्हींको अब अधिक से अधिक यातनाएं देकर वध किया जा रहा है। गाड़ी अब भी धीमी रफ्तार से चली जा रही थी। खिड़की की राह भीतर आने वाले ताजी हवा के झोंके उसे राहत पहुंचाने लगे और गाड़ी के चलने से पहले दर्जे के गद्दों से प्राप्त होने वाले हिचकोले उसे थपथपाने लगे। चन्द्रपाल को नींद आ गई।

एक विचित्र-से शोर से चन्द्रपाल की नींद उचट गई। वह एकाएक उठकर खड़ा हो गया। उसने देखा कि सांझ हो आई है और गाड़ी एक बड़े स्टेशन पर खड़ी हुई है।

स्टेशन के प्लेटफार्म से एक विचित्र तरह का अत्यन्त त्रासपूर्ण, पर जैसे परिचित-सा शोर उसे सुनाई दिया। चन्द्रपाल दूसरी तरफ की बर्थ

पर बैठा था। वह शीघ्रता से प्लेटफार्म की ओर बढ़ा और खिड़की से मुंह बाहर निकालकर प्लेटफार्म की ओर देखने लगा।

ओह, यह सब क्या हो रहा है ! जैसे आज के मनहूस प्रभात का बीभत्स वातावरण चन्द्रपाल का पीछा ही नहीं छोड़ना चाहता। यहां दिन-दहाड़े अस्तोन्मुख सूर्य के प्रकाश में स्टेशन के प्लेटफार्म पर वही सब कुछ हो रहा है, जो आज सूर्योदय से पूर्व उसने उक्त बियाबान जंगल में देखा था। वही इकतरफा हत्याकांड, लूट और बलात्कार। अन्तर केवल इतना ही है कि जिन लोगों पर आज सुबह अत्याचार हुआ था, वे अथवा उनके भाई-बन्द इस समय अत्याचारी बने हुए हैं। पाकिस्तान जानेवाले मुसलमानों की एक बड़ी भीड़ इस प्लेटफार्म पर एकत्र थी। स्टेशन के अधिकारियों ने इस गाड़ी को अगले प्लेटफार्म पर रोकने की व्यवस्था की थी पर हिन्दू-सिक्खों से भरी यह गाड़ी चेन खींचकर इसी प्लेटफार्म पर रोक ली गई। प्रतिशोध की ज्वाला में जलते हुए लोगों ने भय से कांप रहे मुसलमानों पर आक्रमण कर दिया, और भी सैकड़ों लोग उसमें शामिल हो गए थे।

एक क्षण के लिए चन्द्रपाल को प्रतीत हुआ कि जैसे मध्याह्नोत्तर काल में देखा उसका सपना सच हो रहा है। पर उसने पाया कि यह सब देखकर उसे खुशी नहीं हुई। एक अननुभूत खिन्नता, विषाद और घृणा से उसका अन्तस्तल आप्लावित हो उठा। पर इस स्वाभाविक प्रतिक्रिया को जबरदस्ती दबाकर चन्द्रपाल प्रतिहिंसा की भावना को जैसे बलात् उकसाने का प्रयत्न करने लगा। इन दानवों के साथ यही सलूक होना चाहिए। आज सुबह इन्हीं लोगों के भाई-बन्दों ने असहाय स्त्रियों और बच्चों तक पर क्या-क्या जुल्म नहीं ढाए थे। यह सारी कौम एक है और एक समान दानवतापूर्ण है। इस सारी कौम के साथ यही सलूक होना चाहिए।

कोट-पैंटधारी चन्द्रपाल को यहां भी लोगों ने शायद हिन्दुस्तान का कोई उच्च सरकारी अधिकारी समझ लिया था और कोई उसके

डिब्बे के सामने तक भी नहीं आया था। दरवाजा खोलकर वह प्लेटफार्म पर उतर आया। ज़रा आगे बढ़कर उसने देखा कि सम्पूर्ण प्लेटफार्म पर वही नृशंस हत्याकांड हो रहा है। अन्तर केवल इतना ही है कि खास तरह की वरदी पहने कुछ युवक तलवारें हाथ में लिए किसी भी व्यक्ति को भागने तक का अवसर नहीं दे रहे हैं। यह सब देखकर एक भारी खिन्नता उसके अन्तस्तल पर छा गई।

सैकड़ों अभागे स्त्री-पुरुषों और बच्चों की करुण पुकार और क्रन्दन को छिपा देने का प्रयत्न करते हुए 'हर हर महादेव !' और 'सत श्री अकाल !' के नारों के बीच चन्द्रपाल का मस्तिष्क जैसे अपने कर्तव्य की तलाश करने लगा। प्रातःकाल के हत्याकांड में वह एकदम असहाय था और यही उसका बहुत बड़ा सौभाग्य था कि वहां किसीको यह ज्ञात नहीं होने पाया कि वह उनका शिकार है। पर इस समय वह हिंदुस्तान में है। इस समय वह क्या करे—यह प्रश्न एक जीवित समस्या के समान उसके सामने आ खड़ा हुआ। वह तटस्थ रहकर चुपचाप यह हत्याकांड देखता रहे ? इस हत्याकांड में सम्मिलित हो जाए ? या इसे रोकने का प्रयत्न करे ? चन्द्रपाल के लिए ये तीनों ही बातें लगभग असम्भव थीं और चौथा कोई मार्ग उसे दिखाई नहीं दे रहा था। चन्द्रपाल को ज्ञात था कि ये मज़हबी गुण्डे सच्चे धर्म के इतने बड़े दुश्मन हैं कि यदि कोई इन्हें धर्म या इन्सानियत की बात बताने का प्रयत्न करता है तो सबसे पहले वे उसीकी गरदन साफ करते हैं। इतना बड़ा धर्म-संकट और इतनी गहरी किंकर्तव्यविमूढ़ता चन्द्रपाल के जीवन में और कभी नहीं आई थी।

इस पैशाचिक वातावरण में पांच-सात मिनट घूम-फिरकर जैसे एकाएक चन्द्रपाल पर भी एक जुनून सवार हो गया। शीघ्रता से वह अपने डिब्बे में जा पहुंचा, और दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। उसका अधिकांश रुपया पहले भी भीतर की बनियान की जेबों में था। अब उसने अपना कोट उतारकर बर्थ पर फेंक दिया और बटुआ पतलून की जेब में डाल लिया। गले से नेकटाई भी उतार डाली और सिर के बाल

शीघ्रता से एकदम अस्तव्यस्त-से बना लिए। मिनट भर बाद जब वह डिब्बे से बाहर निकला तो एक अच्छा-खासा गुण्डा प्रतीत हो रहा था। अपने डिब्बे के बाहर गार्ड से फीरोज़पुर स्टेशन पर प्राप्त चाबी लगाकर चन्द्रपाल शीघ्रता से उस भीड़ में जा मिला। जैसे वह भी उसीका एक अंश हो।

इन्सान की आवाज़ और चीख-पुकार भी कभी-कभी इतनी पुरअसर बन जाती है, जैसे उसमें बिजली की करेण्ट भर गई हो। प्लेटफार्म के सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त उस करुण क्रन्दन के बीच चन्द्रपाल को भी अचानक एक ऐसी ही हृदयवेधी चीख सुनाई दी, और उसका ध्यान बरबस उसी ओर खिंच गया। चन्द्रपाल ने देखा कि शिशिर की पीत कमलिनी के समान सुन्दर एक तरुणी 'अब्बा! अब्बा!' चीखती हुई उसी ओर दौड़ी चली आ रही है। उसका बुरका उतर चुका है, सिर की ओढ़नी उसके पीछे दौड़कर आनेवाले गुण्डों के हाथ में है और उसकी छाती का वस्त्र भी क्षत-विक्षत हो रहा है। इस तरुणी की पुकार में कुछ ऐसी द्रावकता थी कि भीड़-भाड़ से भरे इस प्लेटफार्म पर भी उसकी राह रोकने का निष्ठुर गुण्डापन कोई नहीं कर रहा था। कुछ गुण्डे 'पकड़ो! पकड़ो!' चिल्लाते हुए इस तरुणी के पीछे भागे चले आ रहे थे।

जो काम कोई और नहीं कर सका, वह चन्द्रपाल ने किया। एकाएक आगे बढ़कर उसने उक्त तरुणी की दोनों बाहुओं को कसकर पकड़ लिया और ऊंची आवाज़ में कहा, 'कहां भागी जाती हो मेरी जान!'

चन्द्रपाल की पकड़ में आकर वह तरुणी बाण-बिद्ध हिरनी के समान चिहुंकी और उसके बाद इस अप्रत्याशित अवरोध से बेहोश हो गई। इसी समय वे गुण्डे भी वहां आ पहुंचे। संख्या में वे चार थे। तरुणी को अपनी बांहों में संभाले हुए चन्द्रपाल ने एक मुस्कराहट के साथ इन गुण्डों का स्वागत किया और एक फोश-सी गाली देकर कहा, 'वाह मेरे यार, क्या बढ़िया माल है!'

एक गुण्डे ने कहा, 'हम देर से इसका पीछा कर रहे थे। यह हमारा माल है।'

चन्द्रपाल ने तरुणी को जैसे और भी निकट खींचते हुए, शराबी के समान स्वर में कहा, 'यह कौम का माल है। है न मेरी जान ?'

दूसरे गुण्डे ने आगे बढ़ते हुए कहा, 'तुमने इसे रोक लिया, इसके लिए शुक्रिया। अब इसे हमारे हवाले करो।'

चन्द्रपाल ने ऊंची हंसी हंसकर कहा, 'इतनी जल्दी क्या है यारो !'

चारों गुण्डे क्षण भर सकते की सी हालत में खड़े रहे। इसी समय चन्द्रपाल ने बड़ी मुलायम आवाज़ में कहा, 'यह कौम का माल है। अब तुम लोग जा सकते हो।'

वे गुण्डे आगे बढ़े ही थे कि चन्द्रपाल के दाहिने हाथ में एक शक्तिशाली रिवाल्वर चमकने लगा। गुण्डे घबराकर रुक गए। उनमें से दो गुण्डे तो यह मुसीबत देखकर नये शिकारों की तालाश में वहां से रफूचक्कर हो गए, पर बाकी दो गुण्डे इतनी आसानी से हार मानने वाले नहीं थे। उनमें से एक ने बड़ी-सी गाली देकर कहा, 'भला चाहता है तो माल हमारे हवाले कर। बड़ा आया है पिस्तौलवाला ! हमारे पास भी असले की कमी नहीं है।'

चन्द्रपाल ने गाली का जवाब और भी बड़ी गाली से दिया और कहा, 'फिर ले आ अपना असला !'

बात बढ़ती देखकर आसपास से बहुत हिन्दू तथा सिक्ख नौजवान वहां आ पहुंचे और उन्होंने बीच-बचाव करने का प्रयत्न किया। एक नौजवान ने सुझाव दिया कि 'क्यों न झगड़े की वजह को ही खत्म कर दिया जाए। न रहेगा बांस और न बजेगी बांसुरी।'

पर एक और युवक ने सुझाव दिया कि जो व्यक्ति इस लड़की से विवाह कर लेने को तैयार हो, यह लड़की उसीको दे दी जाए।

सब लोगों को यह सुझाव पसन्द आया। चन्द्रपाल ने कहा, 'मैं इस लड़की से विवाह करने को तैयार हूं।'

विवाह का सुझाव सुनकर उन दोनों गुण्डों में से भी एक ने हामी भरी ही थी कि उसके दूसरे साथी ने कहा, 'आज सुबह से इस वक्त तक यह शख्स बारह लड़कियों से शादी कर चुका है।'

उस बीभत्स वातावरण में भी रेलवे प्लेटफार्म का वह भाग ऊंची हंसी से गूंज उठा और दूसरे गाली-गलौच करते हुए वे दोनों गुण्डे उस भीड़ में गायब हो गए।

लड़की अभी तक बेहोश थी। दुनिया भर की बहकी-बहकी बातें करते और 'मेरी जान, मेरी जान' कहते हुए चन्द्रपाल उसे अपनी बलिष्ठ बाहुओं में उठाकर अपने डिब्बे में ले आया। उन दिनों इस बात में अनोखापन कुछ भी नहीं था। इससे चन्द्रपाल के डिब्बे के सामने कोई भीड़ जमा नहीं हुई। उन आततायियों के डर से चन्द्रपाल ने खिड़कियों के शटर चढ़ा लिए।

जब तक गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी रही, चन्द्रपाल कभी ऊंची आवाज़ में 'मेरी जान, मेरी जान' पुकारता और कभी भद्दे-भद्दे इश्किया शेर गाने लगता। लगभग सूर्यास्त के साथ जब प्लेटफार्म की यह मारकाट और यह अपहरण-काण्ड समाप्त हुए, गाड़ी आगे बढ़ी।

जब गाड़ी चली तो स्नानागार से पानी लाकर चन्द्रपाल ने उस लड़की के मुंह पर पानी के छींटे दिए। लड़की की मूर्च्छा भंग हुई। चन्द्रपाल उसके सिर के पीछे बैठा था। लड़की संभलकर शीघ्रता से उठी, जैसे वह उठते ही भागने लगेगी। परन्तु चन्द्रपाल पर निगाह पड़ते ही वह फिर से एकाएक चीख उठी। ऐसा जान पड़ा मानो वह फिर से बेहोश होकर गिर पड़ेगी। पर अपने चेहरे पर अधिकतम मधुरता का भाव लाकर चन्द्रपाल ने धीमी आवाज़ में कहा, 'मुझे माफ करो बहिन। तुम्हें बचाने के लिए ही मुझे वह स्वांग भरना पड़ा था।'

वह लड़की पहले तो कुछ भी नहीं समझी। एक परपुरुष के साथ रेल के बन्द डिब्बे में अपने को अकेला पाकर, वह भी ऐसा व्यक्ति जिसने 'मेरी जान' कहकर उसे अपनी बांहों में भर लिया था, पहले तो वह सहमी रही; पर धीरे-धीरे चन्द्रपाल ने उसे सारी स्थिति समझा दी।

चन्द्रपाल ने उसे यह भी बता दिया कि जब-जब गाड़ी खड़ी होगी, सम्भव है कि उसे अपना वह स्वांग फिर से जारी करना पड़े। भरोसा पाकर इस लड़की में जैसे नवजीवन का संचार हो गया।

उसने चन्द्रपाल को बताया कि उसका नाम हमीदा है और चन्द्रपाल की बड़ी कृपा होगी यदि वह उसे दिल्ली में उसके मामा के यहां छोड़ आ सके; क्योंकि प्लेटफार्म के हत्याकाण्ड में वह अपने परिवार से बिछुड़ गई है।

कृष्णपक्ष की दशमी का चांद आसमान के एक कोने से सोई हुई दिल्ली पर अपनी क्षीण ज्योत्स्ना बरसा रहा था। प्रभात के लगभग चार बजे थे। दिल्ली में उन दिनों मार-काट और लूटमार का बाज़ार गरम था। पहले का पूरा दिन और घण्टा भर पहले तक की रात जैसे किसी महासंग्राम के दिन और रात के समान बीते थे। पर अभी कुछ समय से चारों ओर त्रास-भरा एक गहरा सन्नाटा छा गया था। सब लोग अपने मकानों में बन्द हो गए थे। सड़कें और गलियां एकदम सुनसान और वीरान पड़ी थीं। हवा में एक तरह की खुनकी थी और थककर सोई हुई दिल्ली के वीरान गली-कूचे इस हल्की चांदनी में और भी अधिक वीरान प्रतीत हो रहे थे।

मुस्लिम आबादी के एक बड़े मकान के सामने एक खुली जगह पर चन्द्रपाल हमीदा के साथ खड़ा था। अत्यन्त साहस और सावधानता से काम लेकर वह यहां तक पहुंच पाया था।

हमीदा ने कहा, 'मेरे मामा का यही मकान है भाई साहब।'

चन्द्रपाल ने कहा, 'मुझे खुशी है कि मैं अपनी नई बहन को हिफाज़त के साथ उसके घर तक पहुंचा सका।'

'मैं जब तक ज़िन्दा रहूंगी, अपने भाईजान को नहीं भूलूंगी।' कहकर हमीदा क्षण भर के लिए चुप हो गई और उसके बाद बहुत धीरे से उसने कहा, 'अब आप लौट जाइए भाई साहब। यहां आपको खतरा

हो सकता है।'

चन्द्रपाल ने कहा, 'परमात्मा तुम्हें सुखी रखे बहन !' और नमस्कार रूप में एक बार दोनों हाथ जोड़कर वह वापस लौट चला।

'खुदा हाफिज़ !' कहकर हमीदा उसी जगह खड़ी रही।

कुछ दूर पहुंचकर चन्द्रपाल ने पीछे की ओर घूमकर देखा। क्षीण चांदनी में उसे दिखाई दिया कि कुछ ही क्षण पहले वह जिस जगह खड़ा था, उसी जगह घुटने टेक हमीदा अपने खुदा की इबादत कर रही है। अंजलिबद्ध रूप में उसके दोनों हाथ आसमान की ओर उठे हुए हैं, जैसे वह अपने परवरदिगार से कोई दुआ मांग रही हो।

और आज तक चन्द्रपाल का यही विश्वास है कि उक्त घटना के पन्द्रह दिनों के भीतर ही जिस तरह उसकी लाड़ली अप्पी और प्यारी पत्नी कोइटा से हवाई जहाज़ द्वारा पूर्णतः सुरक्षित और सकुशल रूप में दिल्ली पहुंच गईं, वह सब हमीदा की उसी दुआ का प्रभाव था।

डाक्टर की डायरी

डाक्टर राधाकान्त की वसीयत खोलने के समय नगर के आठ-दस प्रतिष्ठित डाक्टर वकील के अनुरोध पर एकत्र तो हो गए थे, परन्तु उनमें से स्वर्गीय डाक्टर राधाकान्त का प्रशंसक शायद एक भी नहीं था। वकील साहब मोहरबन्द वसीयत अपने साथ लाए थे, पर वह अभी खोली नहीं गई थी। सब लोग स्वर्गीय डाक्टर की चर्चा कर रहे थे। डाक्टर भार्गव ने कहा, 'आदमी बुरा नहीं था। अगर उसमें उतना लालच न होता तो वह ऊंचे किस्म का शख्स बन गया होता।'

वकील ने कहा, 'लालची कौन नहीं है, डाक्टर भार्गव? आदमी अधिक से अधिक प्राप्त करने की इच्छा करे, यह तो स्वाभाविक ही है।'

डाक्टर भार्गव ने जवाब दिया, 'बात तो आपकी ठीक है वकील साहब। मगर मैं जिन अर्थों में उनके लालच की चर्चा कर रहा हूं, उन अर्थों को केवल एक डॉक्टर ही समझ सकता है।'

वकील ने कहा, 'हरएक शब्द के कानूनी, डाक्टरी और साहित्यिक अर्थ अलग-अलग हो सकते हैं, मगर...।'

डाक्टर वर्मा ने बीच ही में टोककर कहा, 'वैसी कोई बात नहीं है वकील साहब। डाक्टर भार्गव का मतलब यह है कि डाक्टर राधाकान्त निश्चित रूप से मरते मरीज़ों को भी यह आशा दिलाकर कि मैं तुम्हें ठीक कर दूंगा, उनसे बड़ी-बड़ी फीसें लिया करते थे। यों तो कौन डाक्टर निश्चित रूप से मौत के द्वार पर पहुंच गए मरीज़ को देखने और उसके रिश्तेदारों से फीस लेने से इन्कार करेगा, मगर यह ठीक है कि इस बारे

में डाक्टर राधाकान्त बहुत बार सीमा का उल्लंघन कर जाते थे ।'

वकील साहब ने कहा, 'डाक्टर राधाकान्त के सम्बन्ध में मेरी धारणा सदा से अच्छी रही है । यह भी मैं जानता हूं कि वे एक सफल और अच्छे चिकित्सक थे । पर स्वभावत: आप लोग उन्हें मेरी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते होंगे ।'

डाक्टर वर्मा ने कहा, 'परमात्मा डाक्टर राधाकान्त की आत्मा को शान्ति दे । उनके खिलाफ कुछ कहने की मन्शा तो डाक्टर भार्गव की भी न होगी । और फिर लालच भी एक सापेक्ष शब्द है । कौन कह सकता है कि वह लालची नहीं है । पर वकील साहब, यह तो आपने देख ही लिया है कि डाक्टर राधाकान्त बहुत लोकप्रिय नहीं थे, यों रुपया चाहे उन्होंने कितना ही क्यों न कमाया हो ।'

वकील साहब का चेहरा कुछ गम्भीर हो गया । उन्होंने जैसे स्वगत कहा, 'तभी डाक्टर राधाकान्त के हमपेशा लोगों को यहां एकत्र करने में इतनी दिक्कत हुई है ।'

क्षण भर के लिए वहां सन्नाटा-सा छा गया, जिसे भंग करते हुए डाक्टर वर्मा ने कहा, 'वकील साहब, डाक्टर शुक्ला का इन्तज़ार न कीजिए और वसीयत पढ़ डालिए । वे हरगिज़ नहीं आएंगे । ये सब डाक्टर व्यस्त लोग हैं । आप वसीयत पढ़ डालिए और हम लोगों के हस्ताक्षर ले लीजिए ।'

सब लोगों के सम्मुख वकील ने लिफाफे की मोहर तोड़ी और उसमें से टाइप की हुई वसीयत बाहर निकाली । उसके साथ एक डायरी भी इसी लिफाफे में से निकली । वकील ने वसीयत को पढ़ना प्रारम्भ किया । वसीयत का प्रारम्भिक भाग एकदम रुटीन-सा था । पर उससे भी यह ज्ञात हो गया कि डॉक्टर काफी रुपया छोड़ गए हैं । अपने उत्तराधिकारियों तथा रिश्तेदारों के लिए वे यथेष्ट धन की व्यवस्था कर गए हैं । वसीयत के इस अंश में कोई असाधारण बात नहीं थी । बहुत-से डाक्टरों को

वह उबानेवाला लगा और कुछ डाक्टरों में उससे ईर्ष्या की भावना भी उत्पन्न हुई ।

पर इस उबकानेवाली वसीयत में भी एक स्थान ऐसा आया, जहां सभी डाक्टरों की दिलचस्पी एकाएक जागरित हो गई । डाक्टर राधाकान्त ने लिखा था, 'कुछ विशेष केसों से मुझे पिछले तीस वर्षों में पचास हज़ार से ऊपर की आय हुई है । इस रकम का मैं सदा से पृथक् हिसाब रखता रहा हूं । इस तरह के केसों से मुझे जितनी आय होती थी, उसमें मैं उतना ही अपनी ओर से मिला देता था । वह सब राशि सूद के साथ अब दो लाख पचीस हज़ार रुपया हो गई है । इस राशि के सम्बन्ध में विस्तार से साथ की डायरी में लिखा है ।'

सभी डाक्टरों के चेहरे पर आश्चर्य का भाव स्पष्ट रूप से अंकित हो गया । डा० भार्गव बीच ही में चिल्लाए, 'पहले डायरी खोलिए वकील साहब ।'

वकील ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उपस्थित डाक्टरों की ओर देखा । उन्हें स्पष्ट दिखाई दिया कि सभी लोग इस मामले में गहरी दिलचस्पी लेने लगे हैं और यह भी कि अधिकांश लोग चाहे भार्गव की तरह उतावले भले ही न हों, पर डायरी में क्या है यह जानने की तीव्र उत्सुकता सभी को है ।

वकील साहब ने वसीयत एक ओर रख दी और डायरी को पढ़ना शुरू किया—

७ जनवरी

आज सुबह मैं ज़रा देर से जागा । रात काफी देर तक होमियोपैथी का अध्ययन करता रहा था । यों भी आज सुबह देर में हुई, क्योंकि आकाश मेघाच्छन्न था और जब मैं जागा, तो वर्षा हो रही थी । सरदी बहुत अधिक थी और अभी तक रज़ाई छोड़ने को जी नहीं चाहता था । मैंने सिरहाने के पास लटकता हुआ घण्टी का स्विच दबा दिया । कुछ ही क्षणों में मेरा आदमी वहां आ खड़ा हुआ । मैंने कहा,

'पूरन, एक प्याला चाय जल्दी से।'

पूरन ने कहा, 'चाय तयार है हुजूर ! मैं अभी लाया।'

मिनट भर में पूरन चाय लेकर आ उपस्थित हुआ। पर मैंने सुना कि भीतर आते हुए वह किसी व्यक्ति को जैसे रोककर आया है। मैंने पूछा, 'क्या बात है पूरन ?'

पूरन ने कहा, 'कुछ नहीं साब ! आप चाय तो पी लीजिए।'

और उसी समय एक युवती दरवाज़ा खोलकर शीघ्रता से मेरे शयनागार में ही चली आई। वह बहुत घबराई हुई प्रतीत हो रही थी। पूरन ने कहा, 'ओहो, आप भीतर कैसे चली आईं !' पर वह महिला मेरी ओर देखकर बोली, 'मुझे क्षमा कीजिए डॉक्टर साहब ! मेरी भाभी सख्त बीमार है। मैं बाहर अपनी कार में आपका इन्तज़ार करती हूं। कृपया मिनट भर में कपड़े बदलकर चले आइए।'

मैंने कहा, 'आप चलकर बैठक में बैठिए। मैं अभी आया। पूरन इन्हें बैठक में ले जाओ और ड्राइवर को बुलाओ।'

महिला ने कहा, 'मेरा नाम कमला है डाक्टर साहब। ड्राइवर को तैयार होने में समय लगेगा। मेरी कार आपको वापस भी ले आएगी।' इतना कहकर वह बैठक में चली गई। मुझसे चाय नहीं पी गई और बहुत शीघ्रता से तैयार होकर मैं कमला के साथ चल दिया।

राह में मैंने केस के बारे में पूछने का प्रयत्न किया पर कमला ने कहा, 'बाकी डाक्टरों की क्या राय है, यह हम लोग आपको बाद में बताएंगे। अच्छा यही होगा कि बीमारी क्या है, यह आप बीमार को देखकर स्वयं जांचने का प्रयत्न करें,' मुझे कोई जवाब देता न पाकर कमला ने कहा, 'प्रतिभा की बीमारी से मेरे भाई साहब इतना अधिक घबरा गए हैं कि मुझे ही यह सब दौड़धूप करनी पड़ रही है।'

शहर के बाहर एक बड़ी कोठी की पोर्टिको में जब वह कार रुकी, वर्षा और भी तेज़ हो गई थी। स्पष्टतः यह एक सम्पन्न परिवार का घर था, पर एक गहरी उदासी वहां सर्वत्र व्याप्त थी। वर्दीवाले चौकीदार ने

कार का दरवाजा खोला और एक बैरे ने मेरा बक्स उठा लिया ।

शानदार ढंग से सजी एक बैठक लांघकर मैं एक शयनागार के दरवाजे पर पहुंचा ही था कि भीतर से अत्यन्त करुण स्वर में मुझे 'हे राम ! हे राम !!' की गुहार सुनाई दी । क्षण भर बाद उस सुसज्जित शयनागार में प्रवेश कर मैंने पाया कि एक अत्यन्त सुन्दर तरुणी कष्ट से तड़प-सी रही है । मैंने यह भी देखा कि उसके सिरहाने एक युवक बैठे एकटक दृष्टि से उस तड़पती महिला को चुपचाप देख रहे हैं । उनकी आंखों में आंसू भरे हैं और बहुत शीघ्र मैंने भांप लिया कि युवक का मानसिक कष्ट इस सुन्दरी के शारीरिक कष्ट से भी कहीं अधिक बड़ा है ।

कमला ने कहा, 'भाई साहब ! डाक्टर राधाकान्त आए हैं ।' साथ ही मेरी ओर देखकर और अपने भाई की ओर इशारा करते हुए कहा, 'यह हैं विमल खन्ना ।'

विमल एकाएक उठकर तो खड़े हो गए, पर किसी तरह कोई उत्साह उन्होंने प्रदर्शित नहीं किया । मैं रोगिणी के पास बैठ गया । वे स्पष्टत: एक साहसी महिला थीं और उन्होंने मुझे अपनी बीमारी के सम्बन्ध में भरसक जानकारी दी । पर विमल उसी तरह क्रियाशून्य-से बैठे रहे । बीमारी के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाकर मैंने रोगिणी का कष्ट कम करने के लिए उसे एक दवा दी, जिसका तत्काल असर हुआ । वह काफी आश्वस्त दिखाई देने लगी और मैंने पाया कि पति देवता के चेहरे पर भी कुछ चमक आ गई ।

परिचर्या के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक निर्देश देकर में बैठक में चला आया । कमला ने पूछा, 'कहिए, भाभी को क्या बीमारी है ?'

मैंने कहा, 'आपको मालूम ही है कि इन्हें पेट का कैन्सर है, जो तीसरी दशा तक पहुंच गया है । अब आप मुझे केस का पूरा इतिहास और पिछले डाक्टरों की रिपोर्ट सुना जाइए ।'

और मैंने पाया कि रोगिणी के पतिदेव को जैसे एकाएक लकवा

मार गया। उनके मुंह से बोल तक नहीं फूटा। पर मैंने जानबूझकर उनकी पूर्ण उपेक्षा की और कमला की सहायता से केस का अध्ययन किया। स्पष्ट था कि बीमारी असाध्य है और रोगिणी कुछ ही दिनों की मेहमान है। पेट के कैन्सर का फोड़ा इस समय तक एक छोटे नारियल के आकार का बन चुका था। सबसे ताजी रिपोर्ट डाक्टर बैनर्जी की थी, जो देश भर में कैन्सर के विशेषज्ञ माने जाते हैं। मैंने महिला से पूछा, 'इस रिपोर्ट के अलावा डाक्टर बैनर्जी क्या कह गए हैं ?'

मेरे इस प्रश्न का उत्तर रोगिणी के पतिदेव ने दिया, जो पिछले दो घण्टों में एक बार भी न बोले थे। उन्होंने कहा, 'डाक्टर बैनर्जी के अनुसार आज से ग्यारह दिन के बाद मेरी दुनिया सूनी हो जाएगी।' और उनकी आंखों से आंसू बहने लगे।

मैं एकाएक उठकर खड़ा हो गया। विमल के कंधों को थपथपाकर मैंने कहा, 'डाक्टर बैनर्जी परमात्मा नहीं हैं।'

कमला ने बड़े उत्साहपूर्ण स्वर में कहा, 'डाक्टर साहब, मुझे आप-पर बहुत पुरानी श्रद्धा है। मैं जब बच्ची थी, तब एक बीमारी से आप ही ने मेरी प्राण-रक्षा की थी। आप मेरी भाभी का इलाज करेंगे ?'

मैंने कहा, 'अवश्य।'

कमला ने पूछा, 'आपको कुछ उम्मीद दिखाई देती है ?'

मैंने कहा, 'जब तक प्राण हैं, तब तक उम्मीद है। मैं अभी केस का अध्ययन करूंगा और तब आपको अधिक विश्वास के साथ बता सकूंगा।'

यह कहकर मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने पाया कि कमला के चेहरे पर प्रसन्नता छा गई है और विमल का बुझा हुआ चेहरा क्रमशः दीप्ति प्राप्त करने लगा है। रोगिणी के कमरे में शान्ति थी। शायद उसे नींद आ गई थी।

८ जनवरी

आज सुबह जब मैं रोगिणी को देखने पहुंचा तो पाया कि विमल का

एक तरह से कायाकल्प हो गया है। प्रातःकाल विमल के टेलीफोन से ही मेरी नींद टूटी थी। मेरे पूछने पर विमल ने टेलीफोन पर ही बताया कि प्रतिभा पिछली रात काफी आराम से सोई। यह भी ठीक है कि मेरी दी हुई दवाई से उसे स्पष्टतः कुछ आराम मिला है। पोर्टिको में मेरा स्वागत भी विमल ही ने किया।

बैठक में बैठकर हम तीनों इस केस के बारे में बातचीत करने लगे। विमल ने सीधे तौर से पूछा, 'डाक्टर राधाकान्त, आपको यह आशा है कि आप प्रतिभा को बचा लेंगे ?'

मैं इतने सीधे प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। फिर भी मैंने कहा, 'मैंने इस केस का अध्ययन किया है और मैं समझता हूं कि आपकी पत्नी को रोगमुक्त करने के लिए अभी कुछ कर सकने की पूरी गुंजाइश है। यों बचा सकना तो सदा परमात्मा के हाथ ही होता है।'

विमल ने आजिज़ी से कहा, 'हम लोगों का दिल रखने के लिए आप सत्य को न छिपाएं डाक्टर साहब। मैं आपसे हाथ जोड़कर यह अनुरोध करता हूं।' और विमल ने सचमुच हाथ जोड़ दिए।

मेरी अन्तरात्मा तक सिहर उठी, पर ऊपर से मैं ज़रा भी विचलित नहीं दिखाई दिया। मैंने सिर्फ इतना ही कहा, 'सत्य भी कभी छिप सकता है !'

विमल ने कहा, 'मैं डाक्टर नहीं हूं। पर पिछले दिनों मैंने कैन्सर के बारे में काफी जानकारी एकत्र की है। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में लिखा है कि इस तरह का कैन्सर असाध्य रोग है। डाक्टर बैनर्जी भी यही बता गए हैं। क्या आपका ख्याल है कि प्रतिभा को कैन्सर नहीं है ?'

मैंने कहा, 'टैस्ट से यह स्पष्ट हो गया कि आपकी पत्नी को कैन्सर है। मुझे यह भी ज्ञात है कि एलोपैथी के अनुसार इस तरह का 'ट्रंक' का कैन्सर असाध्य बीमारी है।'

'तो फिर......'

'तो फिर यही कि ऐलोपैथी ही अन्तिम चिकित्सा-विज्ञान नहीं है। मैंने अन्य चिकित्सा-पद्धतियों का भी अनुशीलन और अध्ययन किया है। और मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि होमियोपैथी इसे असाध्य नहीं मानती।'

'होमियोपैथी को आप विज्ञानसम्मत मानते हैं? संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कुछ राज्यों में तो होमियोपैथी कानून से निषिद्ध है।'

'आपको यह ज्ञात ही होगा कि होमियोपैथी का सिद्धान्त बीमारी के चिह्नों को समझकर उनकी चिकित्सा करना है। इससे कोई भी बीमारी पूरी तरह असाध्य नहीं रह जाती। रही वैज्ञानिकता या अवैज्ञानिकता की समस्या। उसका हल आप और मैं नहीं कर सकेंगे।'

मैंने पाया कि विमल और कमला के चेहरों पर आशा का दिव्य प्रकाश दिखाई देने लगा है।

१५ जनवरी

पिछले आठ दिनों से मैं प्रतिभा का इलाज कर रहा हूं। मुझे मालूम है कि उसकी तबीयत निरन्तर बिगड़ रही है। मेरा अधिकतम प्रयत्न यही है कि उसे कष्ट की अनुभूति न हो। मैं उसे ऐसी दवाइयां दे रहा हूं जो उसकी अनुभूति को कुंठित करें और उसे भुलाए रखें। और मैं कर ही क्या सकता हूं!

विमल और कमला फिर भी आश्वस्त दिखाई दे रहे हैं। पूछने पर मैं सदा उनसे यही कहता हूं कि प्रतिभा की हालत धीरे-धीरे सुधर रही है। प्रतिभा को अब दर्द की उतनी अनुभूति नहीं होती, इससे होश में आने पर वह भी यही कहती है कि वह पहले से अच्छी है।

ओह, भाई-बहन को मुझपर कितना अगाध विश्वास है! वे दोनों मुझे धन्वन्तरी का अवतार समझ रहे हैं। कितनी भूल में हैं बेचारे। उनके अनुरोध पर मैं दिन में दो बार प्रतिभा को देखने जाता हूं। सौ रुपया प्रतिदिन के अतिरिक्त दवाइयों और इंजेक्शनों का भी भारी बिल

मैं उन्हें दे रहा हूं।

सम्पूर्ण परिवार के सुख और आश्वासन की दृष्टि से यह रकम व्यर्थ नहीं जा रही।

१९ जनवरी

डा० बैनर्जी की भविष्यवाणी पूरी तरह सत्य सिद्ध हुई। प्रतिभा का आज सुबह देहान्त हो गया है। विमल और कमला दोनों अत्यन्त दुःखी हैं। इस दुःख से मैं उनका परित्राण नहीं कर सका। मुझे शुरू ही से मालूम था कि यह सम्भव नहीं है। पर पिछले ग्यारह दिनों में भाई और बहन को आशा की एक सूक्ष्म-सी किरण का स्पर्श देकर जिस तरह मैंने क्रियाशील और जीवनशील बनाए रखा है, उसके लिए मुझे खेद नहीं है। परिजन की मृत्यु का दुःख व्यक्ति क्रमशः भूल जाता है, पर आसन्न मृत्यु का दुःख और भय उससे भी कहीं अधिक बड़ा है।

पिछले ग्यारह दिनों में विमल से मुझे पन्द्रह सौ रुपया प्राप्त हुआ है। यह राशि मैं उससे न लेता, या इसकी अपेक्षा कम लेता तो उसके दिल में यह सन्देह बना रहता कि मुझे प्रतिभा के ठीक हो जाने की आशा नहीं है। उसे ज्ञात ही था कि गम्भीर केसों के लिए मेरी न्यूनतम फीस सौ रुपया प्रतिदिन है। विमल ही ने मुझे बाधित किया था कि रोगिणी को देखने मैं प्रतिदिन कम से कम दो बार वहां आऊं।

इस डेढ़ हज़ार रुपये की राशि में डेढ़ हज़ार रुपया अपनी ओर से मिलाकर मैं बैंक में एक फण्ड खोल रहा हूं। इस फण्ड में जो कुछ एकत्र होगा, वह नगर में अन्धों और बहरों के लिए एक संस्था खोलने के काम में व्यय किया जाएगा।

डायरी के अभी दस ही पृष्ठ पढ़े गए थे कि इसी समय डाक्टर शुक्ला ने वहां प्रवेश किया। वकील साहब ने डायरी बन्द कर दी। कमरे में गहरी निस्तब्धता छाई हुई थी, जिसे भंग करते हुए डाक्टर शुक्ला ने कहा, 'यहां इतना सन्नाटा क्यों है? राधाकान्त मरते-मरते भी कोई

नया गुल खिला गया है क्या ?'

डाक्टर वर्मा ने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'डाक्टर राधाकान्त हमारे पेशे के गौरवस्वरूप थे शुक्ला ! इस नगर को उनपर अभिमान है।'

शुक्ला को कुछ भी समझ न आया कि बात क्या हो गई, पर उन्होंने देखा कि उनके सभी सहयोगियों के चेहरे डाक्टर वर्मा की बात का पूर्ण समर्थन कर रहे हैं।

मेरे मास्टर साहब

जीवन के संध्याकाल के निकट पहुंचकर भी प्रातःकाल असम्बद्ध रूप में देखे हुए किसी सुख-स्वप्न के समान अपने बचपन की जिन अनेक मधुर स्मृतियों को, मैं कभी-कभी दिल की कसक मिटाने के लिए एकान्त में घण्टों तक बैठकर, निरन्तर देखा करता हूं, उनमें मेरे मास्टर साहब का एक विशेष स्थान है। आज मैं एक प्रतिष्ठित कालेज का प्रिंसिपल हूं। मेरी गंजी खोपड़ी की यहां बहुत बड़ी धाक है। मेरी विद्वत्ता और मौलिकता पर मेरे कालेज के विद्यार्थी और अध्यापक गर्व करते हैं, परन्तु उन्हें क्या मालूम कि उनके प्रिंसिपल साहब इन दिनों भी, कभी-कभी सपना देखते हुए, अपने बचपन के दो-एक साथियों का स्मरण करके उनके भय से सिहर उठा करते हैं। इन सपनों में भी मास्टर साहब ऐन मौके पर पहुंचकर अपने लाड़ले विनायक की रक्षा करते हैं। मास्टर साहब की वृद्ध छायामूर्ति को देखकर जब मेरा भय दूर होने लगता है, उसी समय मेरी नींद उचटकर, उस भयंकर होते हुए भी मधुर स्वप्न को बीच में ही भंग कर देती है।

स्कूल की छोटी जमातों में किसी लड़के का कोई खास नाम पड़ जाना सबसे बड़ी आफत है। उस उपनाम की मोहारनियां रट-रटकर लड़के उसकी नाक में दम कर देते हैं। बदकिस्मती से मेरे मां-बाप ने मुझे जिस स्कूल में भर्ती किया उसमें बहुत शीघ्र मेरे नाम के साथ 'चूहा' विशेषण जुड़ गया। मुझे ठीक याद नहीं कि यह नाम किस दिमाग की उपज थी,—शायद सबसे पहले मेरे गणित के मास्टर ने मेरी चंचलता

देखकर मुझे 'चूहा' नाम से बुलाया था। परन्तु इतना मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि मेरे छोटे कद, तेज चाल और चमकीली आंखों के कारण, बहुत शीघ्र स्कूल भर में मेरा नाम 'विनायक चूहा' प्रसिद्ध हो गया। यहां तक कि मेरे उस्ताद भी मुझे इसी नाम से पुकारने लगे। थोड़े ही दिनों में लोगों ने 'विनायक' का भी बायकाट कर दिया, सिर्फ 'चूहा' कहकर ही मेरा स्मरण किया जाने लगा। उन दिनों मेरे लिए हंसना तक दूभर हो गया था—ज़रा किसीसे कुछ कहा नहीं कि झट वह 'चूहा' कहकर मुझे चिढ़ा देता था। इतना ही नहीं, कई शरारती लड़के मुझे मारकर भाग जाते थे। जब मैं किसी उस्ताद से उनकी शिकायत करता तो वे झट से आकर कह देते, 'नहीं जी, पहले चूहे ने ही मुझे काट खाया था!' मैं इस छेड़ से खिन्न होकर रोने लगता था, और उस्ताद समझ लेते थे कि शायद सचमुच पहले मैंने ही शरारत शुरू की होगी। इन दिनों कभी-कभी मास्टर साहब ही मुझे प्यार से पुचकार-कर आश्वासन दिया करते थे। जब कभी उनके अन्तर् में कोई लड़का मुझसे छेड़छाड़ करता था, तब उसकी आफत आ जाती थी।

मास्टर साहब भूगोल के अध्यापक थे। वे केवल उर्दू का मिडल ही पास थे, परन्तु उन दिनों हम उन्हें संसार के सबसे बड़े विद्वानों में से एक समझा करते थे। जिस विद्वत्ता से वे हमें बिजनौर ज़िले का भूगोल पढ़ाया करते थे, उसकी सारी जमात कायल थी।

भूगोल में मैं अपनी जमात में पहला रहता था, इस कारण मास्टर साहब ने अपने अन्तर के लिए मुझे क्लास का मानीटर बना रखा था। मैं पढ़ाई में अच्छा होते हुए भी अपनी जमात का मानीटर नहीं था। जमात का असली मानीटर मुझसे बहुत चिढ़ता था। वह शीया मुसल-मान था। लोग कहते हैं कि शीया मुसलमानों की चूहों से स्वाभाविक दुश्मनी है। वह सदैव मुझे पिटवाने का प्रयत्न करता था, इसलिए प्रति-दिन मैं भी भूगोल के अन्तर की प्रतीक्षा किया करता था। इस अन्तर में मानीटर पद का भारी अधिकार पाकर मैं अपनी जमात के असली

मानीटर से बदला निकालने का पूरा प्रयत्न करता था। बोर्ड पर टंगे हुए नक्शे के पास खड़े होकर, एक लम्बा प्वाइंटर हाथ में लिए हुए, मैं बड़ी संजीदगी के साथ प्रश्न पर प्रश्न करके सारी जमात को तंग कर देता था। खासकर मानीटर से तो मैं अपना पूरा दिमाग लड़ाकर कठिन से कठिन सवाल किया करता था,—परिणामतः उसे प्रायः प्रतिदिन मास्टर साहब से डांट सुननी पड़ती थी। परन्तु शोक यही था कि भूगोल की बारी सप्ताह में केवल तीन दिन ही आती थी।

मास्टर साहब बहुत गरीब थे। केवल पचीस रुपया मासिक लेकर ही वे अपने बड़े भारी परिवार का पालन करते थे। यह होते हुए भी उनका दिल बहुत उदार था। एक दिन स्कूल की सीढ़ियों से गिरकर मेरी टांग से खून निकलने लगा था, तब मास्टर साहब ने अपनी नई धोती का एक भाग फाड़कर मुझे पट्टी बांध दी थी। वे मेरे सच्चे हितचिन्तक थे—मुझे सदैव पढ़ने-लिखने की ओर विशेष ध्यान रखने के लिए कहा करते थे।

मास्टर साहब में एक अवगुण भी था। वह यह कि वे बहुत आलसी थे। वे सदा क्लास में देर से आते थे और घंटा बज चुकने पर भी देर तक पढ़ाते रहते थे। परन्तु उनका यह अवगुण भी मेरे लिए बहुत लाभकर था। भूगोल के अन्तर में, जब तक मास्टर साहब न आते थे, मैं ही मानीटर के अधिकार से क्लास का निरीक्षण किया करता था। परन्तु मेरा यह भूगोल के अन्तर का आनन्द भी बहुत दिनों तक स्थिर न रह सका। लड़कों की सूझ बहुत दूर तक पहुंचती है। मैं प्रतिदिन एक लम्बा प्वाइंटर हाथ में लेकर लड़कों को परेशान करता हूं, यह देखकर उन्होंने उस प्वाइंटर का नाम 'चूहे की मूंछ' रख छोड़ा। बस, अब ज्योंही प्वाइंटर उठाकर मैं बोर्ड के पास जाता था, लड़के आंख के इशारों से एक दूसरे की ओर देखकर शरारत-भरे ढंग से मुसकराने लगते थे। कभी-कभी इस गुप्त व्यंजना से मैं इतना तंग आ जाता था कि बरबस रोने लगता था। मुझे रोता देखकर मास्टर साहब साक्षात् क्रूरता के

अवतार बन जाते थे। मेरे ही कारण वे कई बार सारी क्लास से उलटे कान पकड़वा चुके हैं।

बचपन की उन सरल विभूतियों को समाप्त हुए बहुत अरसा बीत जाने पर भी मास्टर साहब से मेरा सम्बन्ध नहीं टूटा। लगभग दस-बारह बरस उस स्कूल से बहुत दूर, इलाहाबाद, रहकर भी मैं भाग्यचक्र से फिर उसी स्कूल में लौट आया। इस बार मैं प्रथम श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा पास कर इस स्कूल का मुख्याध्यापक नियुक्त होकर आया हूं। स्कूल में ज़मीन-आसमान का परिवर्तन आ चुका है। उन दिनों वह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का एक साधारण मिडल स्कूल था, अब वह सरकारी हाई स्कूल बन गया है। स्कूल की इमारतें भी पहले की अपेक्षा बहुत विस्तृत और सुन्दर बना दी गई हैं। सहन में एक सुन्दर फुलवारी लग गई है। आज उस ज़माने का एक भी विद्यार्थी या उस्ताद वहां नहीं है। सभी कुछ नया हो चुकने पर भी पुराने जमाने का एक अवशेष अभी तक उसी तरह विद्यमान है। मेरे स्नेही मास्टर साहब आज भी ध्रुवतारे की तरह से वहां विद्यमान हैं। जब मेरा जन्म भी नहीं हुआ था, तब से वे इसी स्कूल में शिक्षक का काम कर रहे हैं। वे तो स्थिर रहे हैं, परन्तु उनकी आयु उनकी तरह स्थिर नहीं रह सकी। अब वे बहुत ही वृद्ध हो गए हैं।

मैं मुख्याध्यापक बनकर स्कूल में आया हूं। स्कूल में मेरा बहुत प्रभाव है। विद्यार्थी मेरा दबाव ही नहीं मानते बल्कि वे मेरा सम्मान भी करते हैं, अध्यापक मुझसे अदब के साथ पेश आते हैं। मैं बहुत शीघ्र कड़े नियन्त्रण का पक्षपाती हैडमास्टर प्रसिद्ध हो गया हूं। घंटा बजते ही सब लड़के स्कूल में पहुंच जाएं, सब काम ठीक समय पर हो, लड़कों की वेश-भूषा यथासम्भव एक समान रहे, वे स्कूल में कभी शोर न करें, इन सब बातों पर मैं बहुत अधिक ध्यान देता हूं। मेरे रौब के कारण ही अब प्रायः सभी उस्ताद खड़े रहकर अपनी जमातों को पढ़ाते हैं।

मेरे मास्टर साहब भी अब मुझसे डरते हुए से पेश आते हैं। यह मुझे पसंद नहीं। आवश्यकता होने पर जब कभी वे चपरासी से पूछकर डरते-डरते मेरे दफ्तर में आते हैं, तब मैं खड़ा होकर उनका स्वागत करता हूं। मैं सदैव उनको सम्मानपूर्वक पहले नमस्कार करने का प्रयत्न करता हूं। सदा उनसे हंसकर सम्मानपूर्वक बात करता हूं।

मेरी नियुक्ति से मास्टर साहब कुछ प्रसन्न भी हैं और कुछ खिन्न भी। वे खिन्न इसलिए हैं कि अपनी इस लम्बी जिन्दगी में उन्हें जिन पचीस-तीस हैडमास्टरों से पाला पड़ा है, वे सब कभी न कभी उनकी आलसी तबियत के कारण उन्हें फटकार अवश्य बता चुके हैं। इस बुढ़ापे में मास्टर साहब का आलस्य और अधिक बढ़ गया है, परन्तु अपने इस नये 'चेले हैडमास्टर' के डर से उन्हें अपनी वह तबियत छोड़ने के लिए जी-जान से प्रयत्न करना पड़ रहा है। इस लम्बे अरसे तक कभी-कभी हैडमास्टर की फटकार सुनने को मेरे मास्टर साहब मौसमी बुखार में कुनीन पीने की तरह से लाज़िमी समझते रहे हैं—इसे उन्होंने कभी बुरा नहीं माना। अब वे अपना स्वभाव बदलने का प्रयत्न कर रहे हैं। पर इतना प्रयत्न करने पर भी उनकी इस आदत में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ सका। आदत पुरानी थी न। वे प्रायः अब भी क्लास में देर से पहुंचते हैं। उनके अन्तरों में लड़के शोर मचाते रहते हैं। मुझे यह सब बुरा प्रतीत होता है, तथापि मैं कभी मास्टर साहब से इस बात की शिकायत नहीं करता। वे जब किसी जमात को पढ़ाते होते हैं, तब मैं उस जमात में जाता ही नहीं—क्योंकि इससे मेरे लिए मास्टर साहब को खड़ा होना पड़ेगा।

गरमी का मौसम अपने पूरे यौवन पर था। अभी प्रातःकाल के आठ ही बजे थे। नौकर बाहर बैठकर पंखा खींच रहा था, फिर भी अपने कमरे के भीतर मुझे असह्य गर्मी सता रही थी। उन दिनों बिजली के पंखों का आम रिवाज नहीं था, तब प्रायः ज़िलों में दफ्तरों में पंखे रस्सी

से खींचकर चलाए जाते थे। गरमी इतनी थी कि कोई काम करने की इच्छा न होती थी। मेरे दफ्तर के सामने स्कूल के सहन में एक पेड़ की साया में किसी क्लास की पढ़ाई हो रही थी, वहां लड़के शोर मचा रहे थे। इस शोर ने मुझे और भी खिन्न कर दिया। धीरे-धीरे लड़कों का यह शोर मेरे लिए असह्य हो गया। मैं क्रोध में भरकर दफ्तर से बाहर निकल आया।

बाहर आकर मैंने जो दृश्य देखा, उसने मुझे एकाएक स्तब्ध कर दिया। मैंने देखा कि मेरे मास्टर साहब एक कुर्सी पर बैठे-बैठे ऊंघ रहे हैं और उनके सामने घास पर बैठे हुए चौथी जमात के छोटे-छोटे बच्चे मनमाना व्यवहार कर रहे हैं और शोर मचा रहे हैं। कुछ लड़के आपस में हाथापाई भी कर रहे थे। मेरे स्कूल के सहन में, और वह भी मेरे दफ्तर के ठीक सामनें इतना अक्षम्य अपराध! जैसे यह स्कूल बिलकुल लावारिस हो! मैं क्रोध में भरा हुआ शीघ्रता से मास्टर साहब के पास पहुंचा। सब लड़के घबराकर एकाएक उठ खड़े हुए। परन्तु मास्टर साहब अभी तक सो रहे थे। दो-एक क्षण तक उनकी ओर देखते रहकर क्रोध-भरे स्वर में मैंने पुकारा, 'मास्टर साहब!'

बूढ़े मास्टर पर मानो किसीने तमंचे से फायर कर दिया। वे हड़बड़ाकर एकदम कुर्सी पर से उठ खड़े हुए। उनका चेहरा अत्यधिक लज्जावनत हो गया। अपनी आंखें नीची कर वे ज़मीन की ओर ताकने लगे।

इसके बाद मैं उनसे कुछ नहीं कह सका। मेरा सारा क्रोध उतर गया। मुझे स्वयं प्रतीत होने लगा कि मैंने यह काम अच्छा नहीं किया।

स्कूल का समय समाप्त हो गया। मैं अपनी मोटर-साइकिल पर सवार होकर अपने घर पहुंचा। आज मेरा दिल बहुत उदास था। कभी मुझे अपने मास्टर साहब से भी इस तरह पेश आना पड़ेगा—यह मैंने

कभी कल्पना भी न की थी। मैंने वहीं देख लिया था कि मेरी फटकार से मास्टर साहब को असह्य क्लेश पहुंचा है। रह-रहकर मुझे उनका उस समय का झुका हुआ, लज्जित और व्यथित चेहरा याद आने लगा। इस मानसिक खेद में आज भोजन भी नहीं कर सका।

दुपहर के दो बजे थे। स्कूल का समय ग्यारह बजे ही समाप्त हो जाता था। इस समय सनसनाती हुई लू चल रही थी। सूर्य आग बरसा रहा था। पर इस सबकी उपेक्षा कर मैं नंगे पैर और नंगे सिर, पैदल ही मास्टर साहब के घर की तरफ चल दिया।

ज़मीन गरम तवे के समान तपी हुई थी। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था मानो मैं आग पर चल रहा हूं। गरम लू से शरीर छिदता जा रहा था। ऐसी भयंकर गरमी मैंने इस जन्म में और कभी अनुभव न की होगी। मैं इन सब बातों की परवाह किए बिना, मास्टर साहब से मिलने की इच्छा से चला जा रहा था।

मास्टर साहब का घर शहर के बिलकुल बाहर, एक खेत के किनारे पर था। एक छोटे-से घर में वे अपने परिवार के साथ रहते थे। इस मौसम में फसल कट चुकी थी, खेत साफ मैदान की तरह से फैला हुआ था। मैंने देखा कि इसी खेत में शीशम के एक पेड़ की घनी छाया के नीचे मास्टर साहब कोई कपड़ा तक बिछाए बिना सोए हुए हैं। मैं उनके पास पहुंचा। मुख को छोड़कर उनका शेष सम्पूर्ण शरीर एक चादर से ढका हुआ था। कुछ देर तक मैं चुपचाप खड़ा रहकर उनकी तरफ देखता रहा। उस निर्जन खेत में मानसिक व्यथा का मूर्तिमान अवतार बनकर सोया हुआ वह दरिद्र और बूढ़ा मास्टर मुझे इस लोक से बहुत ऊपर की चीज़ जान पड़ा।

इसके बाद उनके पैरों के पास बैठकर मैं धीरे-धीरे उनके पैर दबाने लगा। मास्टर साहब जाग उठे। मुझे देखते ही वे एकदम उठकर बैठ गए। उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया। मैंने देखा कि मास्टर साहब की आंखों से आंसू बह रहे हैं।

मास्टर साहब को इसके बाद अधिक दिनों तक मेरे नीचे काम नहीं करना पड़ा। मेरी सिफारिशों के आधार पर उनकी वेतनवृद्धि करके उन्हें उसी जिले के एक प्रारम्भिक स्कूल का मुख्याध्यापक बना दिया गया था।

ताड़ का पत्ता

डाक्टर रीन जब भारतवर्ष की यात्रा समाप्त कर अपने देश जर्मनी में पहुंचे, तब उनकी प्रसन्नता का पारावार न था। विदेश से वापस आकर अपने बंधुओं से मिलने में जो प्रसन्नता होती है, वह तो उन्हें थी ही, परन्तु उनकी इस असाधारण प्रसन्नता का एक और कारण भी था। इससे पूर्व भी डाक्टर रीन कई बार एशियाई देशों का भ्रमण कर स्वदेश लौटे थे, परन्तु उनके घरवालों ने उन्हें इतना अधिक प्रसन्न कभी न देखा था। घर पहुंचकर भारतवर्ष से लाया हुआ विविध सामान अपनी पत्नी तथा बच्चों को देते हुए उनके प्रशस्त मुख पर जो सरल मुस्कराहट निरन्तर बनी हुई थी, वह उनकी हार्दिक प्रसन्नता का सबसे बड़ा प्रमाण थी।

डाक्टर रीन को पुरातत्त्व से बहुत प्रेम था। वे बर्लिन की विश्व-विख्यात यूनिवर्सिटी में इसी विषय के मुख्य उपाध्याय थे। यूनिवर्सिटी के सम्पूर्ण उपाध्याय और विद्यार्थी उनकी योग्यता के कायल थे। वे रात-दिन किसी न किसी खोज में व्यस्त रहते थे, यहां तक कि उन्हें अपनी पत्नी तथा बच्चों से बातचीत करने के लिए भी कम अवसर मिलता था। भारत की इस यात्रा से वे भारतीय पुरातत्त्व का बहुत-सा सामान अपने साथ ले गए थे। कुछ प्राचीन पुस्तकें तथा सिक्के, कुछ सुन्दर प्रस्तर-मूर्तियां, महारानी नूरजहां के घिसाए हुए जूते, मुगल बादशाहों के बर्तन आदि विभिन्न वस्तुओं का एक अच्छा संग्रह वे अपने साथ ले गए थे। इसके अतिरिक्त विशुद्ध भारतीय ढंग की गुड़ियां, खिलौने, मिठाई आदि

भी वे पर्याप्त मात्रा में अपने साथ ले गए थे। बच्चे इन अद्भुत खिलौनों और मिठाइयों को देखकर खुश हो रहे थे।

अपने पति और बच्चों को इतना प्रसन्न देखकर श्रीमती रीन का हृदय आह्लाद से भर उठा। उसकी ओर देखकर डाक्टर साहब ने कहा, 'हिन्दुस्तान की इस यात्रा में मुझे एक बड़ा भारी खजाना हाथ लगा है।'

श्रीमती रीन इस बात का अभिप्राय नहीं समझ सकीं। वे कौतूहल से अपने पति का मुंह देखने लगीं। डाक्टर साहब ने अपनी धर्मपत्नी को अधिक देर तक आश्चर्य में न रखकर मुस्कराते हुए अपने सन्दूक में से बड़े सुरक्षित ढंग से रखा हुआ ताड़ का एक पत्ता निकाला। इस पत्ते पर मटियाले अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था।

डाक्टर साहब की इस अतुल सम्पत्ति को देखकर श्रीमती रीन खिलखिलाकर हंस उठीं। उन्होंने कहा, 'तुम्हारे इस खज़ाने के लिए तो शायद कुबेर भी तरसता होगा!'

डाक्टर साहब ने मुस्कराते हुए कहा, 'यह ताड़ का पत्ता एक ऐसे खजाने की कुंजी है, जिसमें अनन्त वैभव भरा पड़ा है। शोक यही है कि कुंजी तो मेरे पास है, परन्तु वह खजाना हिन्दुस्तान में ही किसी जगह छिपा पड़ा है। उसे ढूंढ़ने के लिए मुझे फिर कभी उस विचित्र देश की यात्रा करनी होगी।'

पति-पत्नी में बहुत देर तक इसी बात को लेकर हंसी-मज़ाक होता रहा।

डाक्टर रीन के इस ताड़पत्र की कथा इस प्रकार है—डाक्टर साहब को भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता पर अगाध विश्वास था, उन्हें यह भी विश्वास था कि उसके द्वारा वर्तमान वैज्ञानिक जगत् भी बहुत-से नये-नये वैज्ञानिक सत्य सीख सकता है। डाक्टर साहब जब सैर के लिए भारतवर्ष आए थे, तब उनके सामने एक यह उद्देश्य भी था कि इस भ्रमण में वे भारतीय पुरातत्त्व की कोई नई बात खोज निकालने

का प्रयत्न करेंगे।

उन दिनों भारतवर्ष में राज्य-परिवर्तन के दिन थे। मुगलों की हुकूमत का अन्त हो रहा था और अंग्रेज़ नदी की बाढ़ की तरह बड़ी शीघ्रता से अपना अधिकार बढ़ाते चले जा रहे थे। डाक्टर रीन के एक अंग्रेज़ मित्र उन दिनों मद्रास प्रान्त में रेवेन्यू कलक्टर थे। उन्होंने एक दिन हंसी-हंसी में अपने मित्र के पुरातत्त्व-प्रेम के चिह्नस्वरूप यह फटा हुआ ताड़ का पुराना पत्ता उन्हें समर्पित किया था। कलक्टर साहब को यह ताड़ का पत्ता, जिसपर उनके लिए अज्ञात लिपि में कुछ लिखा हुआ था, कुछ दिन पूर्व किसी गांव में एक बूढ़े ब्राह्मण के घर से मिला था। मित्र द्वारा मजाक के रूप में प्राप्त इस चीज़ को भी डाक्टर साहब ने बड़े यत्न से अपने पास रख लिया। वापस लौटते हुए जहाज में वे अधिकांश समय इस ताड़पत्र पर लिखित लिपि को समझने में लगाया करते थे।

एक दिन अचानक उस ताड़पत्र में उन्हें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात दीख पड़ी। उन दिनों यूरोप में फौलाद ढालने की बड़ी-बड़ी मशीनों का आविष्कार नहीं हुआ था। भारतवर्ष में दिल्ली के लोहस्तम्भ को देखकर उन्हें अत्यधिक विस्मय हुआ था। वे यह बात जानने के लिए लालायित थे कि भारतीयों ने इस बड़ी कीली का निर्माण किस प्रकार किया होगा। आज अचानक उनकी समझ में आया कि इस ताड़ के पत्ते पर फौलाद बनाने का प्राचीन भारतीय ढंग लिखा हुआ है। डाक्टर साहब प्रसन्नता से उछल पड़े। पर प्रसन्नता का प्रथम आवेग शान्त होने पर डाक्टर साहब ने कुछ शोक के साथ देखा कि ताड़ का यह अकेला पत्ता किसी भी उद्देश्य को सिद्ध न कर सकेगा। यह तो किसी पुस्तक का एक पृष्ठ मात्र ही है। वह सम्पूर्ण पुस्तक प्राप्त किए बिना उनका काम नहीं चल सकता। परन्तु यह सब होते हुए भी अब उन्हें इस बात का पूर्ण भरोसा हो गया था कि ज़रा-सा यत्न करने पर वे सम्पूर्ण पुस्तक को अवश्य खोज निकालेंगे। यही भरोसा उन्हें बहुत अधिक प्रसन्न बनाए रहा।

सन् १८०० के दिसम्बर मास में, जब अठारहवीं सदी पर पटाक्षेप होने में कुछ ही दिन बाकी थे, पेरिस महानगरी में अन्तर्जातीय पुरातत्त्व-महासभा का विशेषाधिवेशन हुआ। पुरातत्त्व-महासभा के इतिहास में इस अधिवेशन की महत्ता अत्यधिक है। उन दिनों विश्व भर में पुरातत्त्व-अन्वेषण का कार्य बहुत जोरों पर था। इस विषय के विद्वानों के तीन दल बने हुए थे। तीनों दलों में कुछ-कुछ प्रतिस्पर्धा का भाव आ चला था। प्रत्येक दल अपने-अपने विभाग को सबसे अधिक महत्ता देने लगा था। बात यह थी कि उन दिनों संसार के तीन भिन्न-भिन्न स्थानों—मिस्र, भारत और कैस्पियन सागर के तटस्थ प्रदेश—पर अन्वेषण का कार्य जारी था। प्रत्येक स्थान के विद्वान अपने स्थान को ही अधिकतम सभ्य और उन्नत सिद्ध करने में लगे हुए थे। इस पारस्परिक विवाद को दूर करने के लिए इस वर्ष पेरिस में पुरातत्त्व-महासभा का यह असाधारण अधिवेशन बुलाया गया था। संसारभर के प्रायः सभी मुख्य-मुख्य पुरातत्त्व-विशारद इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे।

उपर्युक्त तीनों दलों के पक्ष-पोषकों ने, अपने-अपने अन्वेषण के विभागों के सम्बन्ध में खूब विद्वत्तापूर्ण निवन्ध पढ़े। डाक्टर रीन भी इस अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। जब उपस्थित प्रतिनिधि ताली बजा-बजाकर भिन्न-भिन्न विद्वानों के निबन्धों का अभिनन्दन करते थे, तब वे चुपचाप बैठे हुए किसी समस्या पर गम्भीर विचार कर रहे होते थे। जब उच्चकोटि के प्रायः सभी विद्वान अपने भाषण दे चुके, तब लोगों पर यही प्रभाव प्रतीत होता था कि मिस्र देश का पक्ष-पोषक दल अधिक प्रबल रहा है। पांचों निर्णायकों में से भी अधिकांश इसी सम्मति के थे। भारत और कैस्पियन सागर के तटवर्ती प्रदेश के पक्ष-पोषक लोग कुछ-कुछ निराश हो चले थे। इसी समय डाक्टर रीन वक्ता की वेदी पर बड़ी गम्भीरता से आकर खड़े हो गए। उनके हाथ में कोई पुस्तकाकार निबन्ध नहीं था। डाक्टर रीन की प्रतिभा का सम्पूर्ण सम्मेलन कायल था, अतः

लोग चुप होकर कौतूहल से उनकी ओर देखने लगे। डाक्टर साहब ने बड़ी संजीदगी के साथ अपनी अन्दर की जेब से एक चांदी की डिबिया में लपेटकर रखा हुआ वही ताड़ का पत्ता निकाला। डाक्टर साहब ने उसे हाथ में लेकर सात मिनट की एक संक्षिप्त वक्तृता दी। इसमें उन्होंने ताड़पत्र पर का उल्लेख लोगों को सुनाकर सभा से अनुमति चाही कि यह अधिवेशन छः मास के लिए स्थगित कर दिया जाए, ताकि वे इस महत्त्वपूर्ण विषय में पूरी खोज कर सकें।

डाक्टर रीन के वेदी से उतरते ही लोगों ने खूब तालियां बजाकर उनका स्वागत किया। उन दिनों यूरोप भर के वैज्ञानिक जी-जान से इसी बात का यत्न कर रहे थे कि किसी प्रकार फौलाद की बड़ी-बड़ी शिलाएं बनाने का ढंग उन्हें ज्ञात हो जाए। अतः अध्यक्ष महोदय ने डाक्टर रीन के इस प्रस्ताव को लोगों के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत कर दिया। बहुत बड़े बहुमत से डाक्टर साहब का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। विद्वानों का यह भारी दंगल छः मास के लिए स्थगित हो गया। अठारहवीं सदी के कार्य का मूल्यांकन उन्नीसवीं सदी के प्रथम वर्ष में करने का निश्चय किया गया।

गोबर से भली प्रकार पुते हुए एक कच्चे चबूतरे पर पं० गोपाल पंतलू मरणासन्न अवस्था में पड़े थे। उनके इष्ट-बांधव उन्हें घेरे हुए थे। कोई ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था, कोई सिसक रहा था और कोई शोक की गम्भीर मुद्रा धारण किए चुपचाप खड़ा था। सिर की ओर पांच-सात ब्राह्मण तुमुल स्वर में विष्णुसहस्रनाम का पाठ कर रहे थे। पण्डितजी पर थोड़ी-थोड़ी देर ठहरकर गोदावरी के पुनीत जल के छींटे दिए जाते थे। एक छोटे-से बंद कमरे में ये सब उपद्रव एकसाथ किए जा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि पण्डितजी के हितैषी उनको इस कष्ट की दशा में अधिक देर तक रखना पसन्द नहीं करते। अतः बीमारी को असाध्य जानकर उन्हें शीघ्र से शीघ्र भवसागर से पार उतार देना चाहते हैं।

अभी तक पण्डितजी मूर्छित पड़े थे, परन्तु बार-बार गोदावरी-जल के छींटों का आस्वाद पाकर उनकी चेतना थोड़ी देर के लिए पुनः जागरित हो गई। उन्होंने आंखें पलटकर धीरे से पुकारा, 'गिरिधर !'

गिरिधर उनका बड़ा पुत्र था। वह अपने मुंह को पिता की आंखों के एकदम निकट ले जाकर बोला, 'क्या है पिताजी ?'

कुछ देर तक शून्यभाव से उसीकी ओर देखते रहकर पण्डितजी ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया, 'बेटा, कलियुग का घोर राज्य है। संसार से धर्म-कर्म उठ गया है। म्लेच्छ लोग राज कर रहे हैं। अब सुनता हूं कि यह जो नई म्लेच्छ जाति हम लोगों पर राज्य करने आई है, वह हमारे धर्मशास्त्रों पर भी अनाचार करने का निश्चय कर चुकी है। कुछ कुलांगार ब्राह्मण धन के लोभ से इनको संस्कृत पढ़ाने भी लगे हैं। मालूम होता है कि अब शीघ्र ही कल्कि अवतार होनेवाला है। यह तो अनाचार की पराकाष्ठा हो चली।'

इतना कहकर वे थोड़ी देर के लिए थककर चुप हो गए। पण्डितजी को होश में आया देखकर उनकी बात सुनने की इच्छा से ब्राह्मणों ने थोड़ी देर के लिए विष्णुसहस्रनाम का पाठ बंद कर दिया था। अब उनको चुप देखकर पाठ का दौरा फिर से जारी हो गया।

थोड़ी देर बाद पं० गोपाल फिर बोले, 'गिरिधर ! मेरे घर में बड़े पुराने समय से एक थाती चली आई है। अनादिकाल से हमारे पुरखे मृत्यु के समय इसे अपने वंशधरों को अर्पित करते चले आ रहे हैं। यह थाती 'धातुसार' नामक एक पुस्तक के रूप में है। इसे भली प्रकार गुप्त रखना। आजकल म्लेच्छ लोग धन का लोभ देकर बड़े-बड़े प्रतिष्ठित ब्राह्मणों से भी इस प्रकार के ग्रन्थ खरीद ले गए हैं। तुम कभी इस प्रकार का अनाचार न करना। बेटा, तुम्हें मेरी सौगन्ध है, इसे कभी किसी दूसरे व्यक्ति को न देना।'

इसके बाद पण्डितजी की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। गिरिधर से घर के सम्बन्ध में कुछ और बातें कहते-कहते उन्हें फिर से मूर्छा आ

गई। यह मूर्छा फिर कभी न टूटी।

पेरिस से वापस आते ही डाक्टर रीन पुनः भारतवर्ष के लिए चल दिए। इस समय उनकी प्रसन्नता गम्भीर चिन्ता के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी। उन्हें एक भारी उत्तरदायित्व अनुभव हो रहा था। डाक्टर साहब को इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए केवल छः मास का अवसर ही मिला था। उन्होंने सोचा कि तीन मास तो अपने देश से भारतवर्ष आने-जाने में ही व्यय हो जाएंगे। फिर महासभा से कम से कम एक मास पूर्व यह पुस्तक अवश्य ही प्राप्त हो जानी चाहिए, ताकि उसका अध्ययन भी किया जा सके। इस प्रकार केवल दो मास में ही उन्हें इस ज़रा-सी पुस्तक को सारे दक्षिण भारत में से ढूंढ़ निकालना था। फिर यह भी मालूम नहीं कि यह पुस्तक आजकल कहीं प्राप्य भी है या नहीं। पुस्तक का एक पृष्ठ इस प्रकार से योंही मिलना, तो इसी बात का प्रमाण है कि शेष पृष्ठ अब नष्ट हो चुके हैं। ये सब बाधाएं सोचकर भी वे निराश नहीं हुए। मद्रास में पहुंचकर अपने मित्र की सहायता से वे अपनी खोज में व्यस्त हो गए।

इस कार्य में डाक्टर साहब को बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। गांवों के लोग उनकी गोरी चमड़ी को देखकर उनसे भय खाते थे। उनके प्रश्नों को सुनकर वे उनपर और भी अधिक सन्देह करने लगते थे। उन्हें यह देखकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि ये दरिद्रता-पीड़ित, पराधीन और निर्धन भारतीय स्वयं नितान्त दयनीय दशा में रहते हुए भी एक सभ्य तथा सम्पन्न विदेशी से बीमारी की तरह घृणा करते हैं। डाक्टर साहब कभी-कभी बिलकुल अकेले साधारण भारतीय जन-वेश धारण कर गांवों में निकल जाते थे। परन्तु इस प्रकार भी उन्हें कोई सफलता प्राप्त न हुई। मद्रास में उनके शरीर की सफेदी द्वारा लोगों को झट से उनके म्लेच्छ होने का ज्ञान हो जाता था। फिर सौभाग्य से यदि उन्हें कोई म्लेच्छ न भी समझे, तो भी ब्राह्मण लोग शास्त्र के सम्बन्ध में कोई बात

बताने को तैयार ही न थे और अन्य वर्णोंवाले शास्त्र के सम्बन्ध में कुछ जानते ही न थे।

इस प्रकार निरर्थक श्रम करते हुए उन्हें डेढ़ मास बीत गया। उनकी शारीरिक दशा भी खराब हो चली। अप्रैल का महीना था, अतः गर्मी पर्याप्त पड़ने लगी थी। डाक्टर साहब कुछ-कुछ निराश हो चले। तब इन उपायों से काम चलता न देख, अपने कलक्टर मित्र का कहना मानकर वे मद्रास नगर में वापस चले आए। यहीं रहकर वे बहुत-से भारतीय ब्राह्मणों द्वारा ही उक्त ग्रन्थ की खोज करवाने लगे। कलक्टर साहब भी कुछ दिनों का अवकाश लेकर बड़ी सरगर्मी से इसी काम में जुट गए। इस कार्य का अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व वे जानते थे।

एक सप्ताह बाद उन्हें एक आदमी से ज्ञात हुआ कि मद्रास से अस्सी मील दूर एक गांव में पं० गिरिधर पंतलू नामक व्यक्ति के पास एक प्राचीन शास्त्र है। बहुत-से नकद रुपयों की व्यवस्था कर उसी दिन दोनों मित्रों ने उस गांव की ओर प्रस्थान किया।

दो दिन बाद सांझ के समय दोनों मित्र उस गांव में पहुंचकर एक डाकबंगले में ठहरे। वे भारतीय ब्राह्मणों के स्वभाव को भली प्रकार जानते थे। उन्हें ज्ञात था कि भारत के ईमानदार ब्राह्मणों को डरा-धमकाकर उनसे कुछ प्राप्त कर सकना असम्भव है। अतः उन्होंने एक और उपाय काम में लाने का निश्चय किया। पं० गिरिधर पंतलू को उसी समय बुलवा भेजा गया।

सूर्य डूबने में अभी कुछ देर थी कि पं० गिरिधर पंतलू डरते-डरते डाकबंगले पर पहुंचे। दोनों साहबों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। पण्डितजी के लिए गोबर का चौका लगवाकर गद्दी लगाई गई थी, उन्हें उसीपर बिठाकर साहब लोग स्वयं एक चटाई पर बैठ गए।

डाक्टर रीन संस्कृत जानते थे, उन्होंने संस्कृत में ही प्रश्न करने प्रारम्भ किए। ब्राह्मण देवता पहले तो एक म्लेच्छ के सम्मुख संस्कृत बोलते हुए कुछ घबराए, परन्तु फिर और कोई मार्ग न देखकर उन्होंने संस्कृत में ही

उत्तर देना शुरू किया। डाक्टर रीन ने एक लम्बी भूमिका के साथ पूछा, 'आपके पास जो प्राचीन धर्मग्रन्थ हैं, उनके नाम में कौन-कौन-से अक्षर सुशोभित हैं ?'

पण्डितजी घबरा गए। यह प्रश्न किस उद्देश्य से किया जा रहा है—इसे वे न समझ सके। परन्तु थोड़ी देर तक हिचकिचाते रहकर उन्होंने उत्तर दिया, 'धातुसार'।

डाक्टर साहब का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उनके पास जो ताड़पत्र था, उसपर भी 'धातुसार' यही शब्द लिखा हुआ था। जबरदस्ती अपनी प्रसन्नता के आवेश को रोके रहकर उन्होंने अगला प्रश्न किया, 'वह पुस्तक किस वस्तु पर लिखी हुई है ?'

उत्तर मिला, 'ताड़पत्रों पर।'

डाक्टर साहब ने फिर पूछा, 'उसका आकार क्या है ?'

पण्डितजी को आज तक कभी इस प्रकार किसी वस्तु के आकार, रंग, रूप आदि का वर्णन नहीं करना पड़ा था, अतः वे यत्न करने पर भी अपना अभिप्राय स्पष्ट न कर सके। डाक्टर साहब ने उन्हें असमंजस में पड़ा देखकर अपने सामान में से वही चांदी की डिबिया निकाली, जिसमें ताड़पत्र रखा था, निकालकर उसे दिखाते हुए पूछा, 'क्या आपकी पुस्तक का यही आकार है ?'

उसे देखते ही पण्डितजी चौंककर बोल उठे, 'हैं! यह आपके पास कहां से आया ? यह तो मेरी पुस्तक का ही पृष्ठ है श्रीमन् !'

डाक्टर रीन ने इस प्रश्न का उत्तर न देकर कलक्टर साहब की ओर देखा। अपने प्रश्न के उत्तर की अधिक देर तक प्रतीक्षा न करके पण्डितजी ने कहना शुरू किया, 'पिताजी की तेरहवीं के बाद जब घर की सफाई की गई, तभी हमारे धर्मग्रन्थ का यह पृष्ठ न जाने अचानक कहीं खो गया था। क्या आप यह पृष्ठ मुझे वापस करने आए हैं साहब ? आप लोग सचमुच बड़े दयालु हैं। कृपया यह मुझे लौटा दीजिए। आपका यह उपकार मैं जन्म भर न भूलूंगा।'

यह कहते-कहते पंडितजी का चेहरा भय से पीला पड़ गया। उन्हें याद आया कि पिताजी मरते समय अपनी कसम खिलाकर जिस बात से मुझे रोक गए थे, विधिवश वह बात स्वयं ही हो गई। यह अभागा पत्ता न जाने किस प्रकार इन म्लेच्छों के हाथ जा लगा।

पण्डितजी को चिन्ताकुल देखकर डाक्टर साहब ने दिल खोलकर हिन्दू धर्म की महत्ता और उदारता का वर्णन करते हुए संसारोपकार की लम्बी भूमिका बांधकर कहा, 'आप यह पुस्तक हमें दे दीजिए। सारा संसार इसके लिए आपका यश गाएगा। आपके इस महादान के प्रतिफल में हम तुच्छ लोग आपकी कोई बड़ी सेवा तो कर ही नहीं सकते; हां, हमारी दस हज़ार रुपयों की दक्षिणा स्वीकार कीजिए।'

पण्डित गिरिधर पंतलू दस हज़ार का नाम सुनकर अचम्भे में आ गए। उन्होंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि उनकी पुस्तक का इतना अधिक मूल्य है। उन्होंने कभी कल्पना द्वारा भी दस हज़ार रुपयों के दर्शन न किए थे। परन्तु इसी समय उन्हें अपने पिता के अन्तिम वचन याद आए। दस हज़ार का बड़ा प्रलोभन उनके हृदय में प्रवेश न पा सका। उन्होंने पुस्तक देने से इनकार कर दिया, चाहे इनकार करते हुए उनकी जिह्वा लड़खड़ा रही थी।

डाक्टर साहब से पण्डितजी की कमज़ोरी छिपी न रह सकी। उन्होंने धीरे-धीरे बड़ी नम्र भाषा में अपनी दक्षिणा बढ़ानी प्रारम्भ की, 'दस हज़ार! पन्द्रह हज़ार! बीस हज़ार! पचीस हज़ार! तीस हज़ार!'

परन्तु पण्डितजी के मुंह से हां न निकल सकी। वे मसनद पर पीठ टेककर चुपचाप बैठे थे। लकवे के बीमार की तरह उनका सारा शरीर कांप रहा था। माथे से पसीने की धाराएं बह रही थीं, परन्तु मुंह इस प्रकार बंद था मानो किसीने उसे ज़बरदस्ती भींच रखा हो। पण्डितजी को इस हालत में देखकर कलक्टर साहब के लिए हंसी रोकना असम्भव हो रहा था, पर डाक्टर रीन उसी प्रकार गम्भीर भाव से बैठे

थे। स्वयं उनके अपने हृदय की गति भी बहुत बढ़ गई थी। वे सोच रहे थे, 'कहीं यह ब्राह्मण काबू में न आ सका तो ?'

जादूगर ने जादू की लकड़ी फिर से हाथ में ली। प्रलोभन अब बड़ी-बड़ी छलांगें मारने लगा। तीस हज़ार से एकदम चालीस हज़ार हुआ। पण्डितजी अब भी चुप थे। चालीस हज़ार से बोली सीधी पचास हज़ार पर पहुंची, पर पण्डितजी अब भी न बोले।

डाक्टर साहब एक ठंडी सांस लेकर आगे बढ़ने से रुक गए। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण जायदाद नीलाम पर चढ़ा दी थी। अब पण्डितजी के लिए चुप रहना असम्भव हो गया। वे कांपते हुए लड़खड़ाती आवाज़ में बोले, 'कल प्रातः मेरे घर पर आकर ले जाइएगा।' मालूम होता है कि ये शब्द कहते हुए उन्हें अपनी सारी ताक़त लगा देनी पड़ी। वे बेहोश होकर वहीं गिर पड़े। उन्हें उठाकर घर पहुंचाया गया।

डाक्टर साहब की प्रसन्नता का पारावार नहीं था। उन दिनों तक तारबर्की का आविष्कार नहीं हुआ था, अतः डाक्टर साहब अपने पेरिस तथा बर्लिन के मित्रों को इस बात की सूचना न दे सके। सारी रात डाक्टर साहब को नींद न आई, वे इस प्रतीक्षा में थे कि कब लम्बी रात समाप्त हो और वे उस उद्देश्य में सफलता प्राप्त करें, जिसके लिए वे महीनों खाक छानते रहे हैं।

प्रातःकाल होते ही पन्द्रह-बीस सिपाहियों के सिरों पर पचास हज़ार रुपया लदवाकर डाक्टर साहब अपने कलक्टर मित्र के साथ पण्डित गिरिधर पंतलू के घर पहुंचे। पण्डितजी का घर एक लम्बे-चौड़े मैदान के किनारे पर था। उस मैदान में पहुंचते ही डाक्टर साहब ने एक विचित्र दृश्य देखा। उन्हें दूर से दिखाई दिया कि केवल एक लंगोट बांधकर ब्राह्मण देवता समाधि लगाए बैठे हैं। उनके सामने ज़मीन में खुदे हुए एक बड़े-से यज्ञकुंड में प्रचण्ड अग्नि धधक रही है। गिरिधर अपनी जांघों पर एक बस्ता खोलकर बैठा हुआ बड़े गौर से किसी चीज़ को देख रहा

है। किसी अज्ञात अनिष्ट की आशंका से डाक्टर साहब का हृदय कांप गया। वे अपने साथियों को पीछे छोड़कर बड़ी तेजी से यज्ञकुण्ड की ओर दौड़े।

अचानक पण्डितजी की दृष्टि उन लोगों पर पड़ी। डाक्टर रीन को देखकर वे इस तरह चौंके, जिस तरह पागल कुत्ता पानी को देखकर चौंकता है। और उसी क्षण बिजली की तेजी से पण्डित गिरिधर पंतलू ने वह सम्पूर्ण बस्ता यज्ञकुण्ड की धधकती ज्वालाओं को समर्पित कर दिया।

डाक्टर रीन यज्ञकुण्ड तक पहुंच भी गए, पर तब तक उस बस्ते की अमूल्य सम्पत्ति स्वयं आग की ज्वालाओं का रूप धारण कर चुकी थी। डाक्टर साहब दोनों हाथों से अपना सिर पकड़कर यज्ञकुण्ड के किनारे बैठ गए और पण्डित पंतलू की ओर वे इस तरह देखने लगे जैसे वह मनुष्य न होकर कोई भयंकर जादूगर हो!

गोरा

कह नहीं सकते कि सुखी जीवन की वास्तविक पहचान क्या है, फिर भी इतना निश्चित है कि रामदास एक सुखी किसान था। आर्थिक दृष्टि से वह बिलकुल दरिद्र था। गांव की हद जहां जंगल से मिलती थी, उस स्थान की बीस-पच्चीस बीघा मामूली ढंग की ज़मीन पर रामदास का मौरूसी हक था। उसके परिवार में पत्नी के अतिरिक्त दो-तीन बच्चे भी थे। घर-गिरस्ती के लिए आवश्यक सामान का उसके पास अभाव नहीं था। मुरब्बा और परौंठे न सही, नमकीन सत्तू ही सही—यह परिवार जिस किसी तरह दोनों जून अपने पेट के गढ़ों को भर अवश्य लेता था। पति-पत्नी में खूब निभती थी। दोनों ही शरीर से स्वस्थ और स्वभाव के मीठे थे। रामदास मेहनती आदमी था। उसे काम करने का शौक था, मानो वह इसके लिए बहाने ढूंढ़ता हो। रबी की फसल कट चुकने के बाद भी उसे किसीने सुस्ताते नहीं देखा। उन दिनों के लिए वह पहले ही से अपनी ज़मीन के पांच-सात कम उपजाऊ बीघों को घेर-घारकर तैयार कर रखता था। यहां खरबूजे बोए जाते थे। रामदास-परिवार के ये दिन बड़े मज़े में कटते थे। खरबूज़ों के खेत में जामुन की घनी छाया के नीचे फूंस की एक ज़रा-सी झोंपड़ी। यही रामदास के खरबूज़ों का स्टोर-हाउस था और यही उसके परिवार का आश्रय-स्थान। वैशाख मास के गर्म दिनों की दुपहर जामुन के इसी पेड़ की छाया में कटा करती थी। सांझ के बाद दिन भर बिकने से बचे हुए खरबूज़ों के साथ गेहूँ की रोटी खाकर ये लोग ईश्वर को धन्यवाद दिया करते थे। उन्हें न धनियों

से द्वेष था और न ज़मींदार से ईर्ष्या ।

वैशाख मास की एक चांदनी रात को पास ही से एक हलकी-सी आवाज़ सुनकर रामदास की नींद उचट गई । करीब आधी रात बीत गई थी । रामदास को भय हुआ कि कहीं बाड़ फांदकर गीदड़ तो खेत में नहीं घुस आए, परन्तु एक बार चांदनी में अपने छोटे-से खेत को भली प्रकार देख लेने पर उसका यह सन्देह दूर हो गया । इसी समय उसे फिर से वही आवाज़ सुनाई दी । यह आवाज़ सुनकर रामदास पहचान गया कि खेत के पासवाले जंगल में, कोई जंगली जीव किसी गाय के बछड़े पर आक्रमण कर रहे हैं । अपने खेत में किसी प्रकार का उपद्रव न देखकर पहले तो रामदास के जी में आया कि क्यों मुफ्त में एक बछड़े के लिए अपनी जान खतरे में डालूं । परन्तु बार-बार 'बां-बां' की करुण चिल्लाहट सुनकर वह रह न सका । रामदास खाट से उतरकर खड़ा हो गया । एक हाथ में मज़बूत डण्डा और दूसरे हाथ में टूटी हुई चिमनीवाला बरसों पुराना हरीकेन लैम्प लेकर वह उसी ओर चल दिया, जिस ओर से आवाज़ आ रही थी ।

खेत की हद से मिलकर जो जंगल मीलों तक फैला हुआ था, उसका प्रान्त-भाग बहुत घना नहीं था । साधारण झाड़ियों और ढाक के पेड़ों के अतिरिक्त कोई बड़ा वृक्ष वहां नहीं था । जंगल में प्रविष्ट होकर एक बड़े झुरमुट की ओट में रामदास ने देखा कि एक छोटे-से बछड़े पर चार-पांच गीदड़ आक्रमण कर रहे हैं और वह बेचारा ज़मीन पर लेटा हुआ बड़े करुण स्वर में 'बां बां' कर रहा है । एक प्रकाशहस्त आदमी को अपनी तरफ आता हुआ देखकर सब गीदड़ भाग खड़े हुए ।

रामदास ने पास जाकर देखा कि बछड़े को बहुत अधिक चोट नहीं आई है । सिर्फ उसकी अगली दाईं टांग और पीठ का कुछ भाग ही ज़ख्मी हुआ है । रामदास ने अनुमान से पहचाना कि उसकी आयु दो मास से अधिक प्रतीत नहीं होती । बछड़े का रंग बिलकुल श्वेत था और उसके माथे पर लाल शंख का निशान बना हुआ था । रामदास बछड़े को आराम

से गोद में उठाकर अपनी झोंपड़ी में चला आया।

प्रात:काल उठकर रामदास ने जांच करके देखा कि बछड़े की जात बहुत अच्छी है। अगर कुछ यत्न किया जाए तो यह एक बहुत बढ़िया बैल बन सकता है। उसकी पत्नी अभी सोई हुई थी कि उसने इस बछड़े को पत्नी की चारपाई पर डाल दिया। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। इस प्रकार अकस्मात् निद्रा भंग हो जाने का कारण भी अभी तक वह पूरी तरह से नहीं समझ पाई थी कि उसने सुना, रामदास कह रहा था, 'परमेश्वर ने पालने के लिए तुम्हें एक और बच्चा दिया है।'

पति-पत्नी दोनों ने सम्मिलित रूप से खूब सोच-विचारकर इस मनुष्येतर जाति के बालक का नाम रखा—'गोरा।'

रामदास की किस्मत अच्छी थी। उसके प्रयत्न से गोरा के दोनों घाव शीघ्र ही भर गए। अच्छा होकर वह खूब कूदने-फांदने लगा। कुछ ही महीनों में गोरा का डील-डौल खूब भर आया। उसके कन्धे उन्नत और पट्ठे मजबूत बन गए।

देखते ही देखते 'गोरा' एक बड़े डील-डौलवाला बैल बन गया। उसके मुकाबले का बैल आसपास के अनेक गांवों में मिलना कठिन था। उसकी चाल हाथी की चाल के समान मस्तानी थी और उसकी गरज बादल की गरज के समान गम्भीर। लोग उसे अब विस्मय के साथ देखते और रामदास के भाग्य की सराहना करते थे।

रामदास को गोरा पर अपने बच्चों के समान प्रेम था। प्रतिदिन दोनों समय मेहनत करके वह उसके लिए कुट्टी तैयार किया करता था। यथाशक्ति वह उसे कभी-कभी तेल और घी भी पिलाया करता था। रामदास की पत्नी को तो गोरा से एक तरह का मोह हो गया था। वह उसे हर समय आंखों के सामने रखना चाहती थी। उसके छोटे बच्चे उस विशालकाय बैल की चौड़ी छाती के नीचे खड़े होकर उसके गले की नरम और सुन्दर सास्ना को अपने चंचल हाथों से इधर-उधर हिलाया

करते थे। गोरा आंखें बन्द करके बच्चों के इस अबोध प्यार का मज़ा लिया करता था। गोरा के डील-डौल का दूसरा बैल रामदास के पास तो क्या, गांवभर में नहीं था, इस कारण रामदास उसे हल में नहीं जोत सकता था। यही दलील देकर बहुत-से लोगों ने एक-एक हज़ार रुपये तक दाम लगाकर गोरा को रामदास से खरीद लेना चाहा, परन्तु रामदास को यह मंजूर नहीं था। वह कहता था, कभी धन के लालच से कोई अपनी सन्तान को भी बेचता है? रामदास के पास एक मामूली-सी बैलगाड़ी थी, वह गोरा को इसीमें जोता करता था।

रामदास के गांव के नज़दीक ही एक बहुत बड़ा सरकारी मैदान था। लोगों में मशहूर था कि मुसलमानी हुकूमत के दिनों में राह चलती हुई फौजें इसी मैदान में पड़ाव किया करती थीं। आजकल यह मैदान एक ग्रामीण प्रदर्शनी के काम में लाया जाता था। यहां शरद् ऋतु में सरकार की ओर से पशुओं की एक बड़ी भारी नुमाइश की जाती थी। दूर-दूर के लोग इस नुमाइश में अपने जानवरों को लाते थे। जो जानवर सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते थे, उन्हें सरकार की ओर से इनाम भी दिया जाता था।

गांव के ज़मींदार का नाम था लखपतराय। वह बेपरवाह, आलसी और शौकीन आदमी था। गांव के काम-काज में अधिक दखल देना उसे पसन्द नहीं था। यही कारण था कि उस गांव के किसानों को वर्ष के अधिकांश भाग में अपने ज़मींदार से कोई विशेष शिकायत नहीं रहती थी। परन्तु जिन दिनों ज़मींदार को दावत, शिकार या सरकारी अफसरों की खातिरदारी करने की खब्त सवार होती थी, उन दिनों गांववालों की आफत आ जाती थी। नुमाइश के महीने में जब ज़िले के कुछ छोटे-मोटे अफसर इन्तज़ाम का काम करने के लिए इस गांव में आते थे, उन दिनों उनकी खातिर करते-करते किसानों की जान निकलने लगती थी।

प्रदर्शनी की प्रतिस्पर्धा में भाग लेने का ज़मींदार को खास शौक था। उसने कुछ बैल और घोड़े महज़ इसी काम के लिए पाल रखे थे। ज़मींदार के जानवर थे, खाने-पीने की क्या कमी! खासकर नुमाइश के

दिनों में एक-एक जानवर के पीछे चार-चार किसान दिन-रात भागे-भागे फिरते थे। नुमाइश का सबसे पहला इनाम कई बरसों से लखपतराय को उसके एक बैल के लिए मिल रहा था। इस वर्ष भी ज़मींदार को यह विश्वास था कि प्रदर्शनी का प्रथम पुरस्कार उसीके हाथ में रहेगा।

इधर लोगों को यकीन था कि ज़मींदार के बैल का गोरा से कोई मुकाबला ही नहीं है। यदि दोनों बैलों को भिड़ा दिया जाए तो गोरा एक ही बार में ज़मींदार के बैल को दूर पटक दे। इस कारण लोग रामदास पर इस बार की प्रदर्शनी में सम्मिलित होने के लिए जोर डाल रहे थे, मगर वह इन्कार करता था। मगर यार लोग भी कब मानने-वाले थे? खासकर जो लोग प्रतिवर्ष ज़मींदार से नीचा देखते थे, वे भला इस सुवर्ण-अवसर को किस तरह हाथ से जाने देते? आखिर लोगों ने इस वर्ष की प्रदर्शनी में सम्मिलित होने के लिए रामदास को तैयार कर ही लिया।

नतीजा यह हुआ कि इस वर्ष नुमाइश का प्रथम पुरस्कार ज़मींदार के बैल को नहीं मिल सका, गोरा ही इस इनाम का अधिकारी समझा गया।

रामदास अपनी गाड़ी को घर की तरफ दौड़ाए लिए जा रहा था। गोरा के लिए यह खाली गाड़ी फूल के समान हलकी थी। गोरा ने कल ही नुमाइश में नामवरी हासिल की थी, इसलिए रामदास ने उसे आज यथेष्ट घी पिलाया था। गोरा के गले में उसने फूलों की एक माला डाल रखी थी। पशु होते हुए भी गोरा यह समझ गया था कि आज उसका मालिक उससे विशेष प्रसन्न है। इस कारण वह मस्तानी चाल से गाड़ी को उड़ाए चला जा रहा था। गाड़ी में बैठा हुआ रामदास अपने ऊबड़-खाबड़ स्वर में कोई ग्रामीण गीत गा रहा था।

अपने घर के सामने पहुंचते ही रामदास का हृदय किसी अनिष्ट की आशंका से कांप उठा। उसके घर के द्वार पर ज़मींदार का कारिन्दा खड़ा

हुआ था। रामदास का उन्मुक्त संगीत सहसा रुक गया। अनजान पशु ने भी मानो अपने मालिक के मन का भाव भांप लिया, उसकी चाल धीमी पड़ गई।

इसी समय कारिन्दे ने आगे बढ़कर आदेश दिया, 'रामदास, चलो, तुम्हें ज़मींदार ने याद किया है।'

'भाई साहब, राम-राम, कहकर रामदास ने बड़ी नरम आवाज़ से पूछा, 'कुछ मालूम है कि मुझे मालिक ने क्यों बुलाया है ?'

कारिन्दे ने लापरवाही से जवाब दिया, 'नहीं, मुझे क्या मालूम !'

रामदास ज़मींदार के सम्मुख पहुंचा। ज़मींदार लखपतराय अपने मकान के सहन में धीरे-धीरे टहल रहा था। रामदास ने वहां पहुंचकर उसे झुककर बन्दगी की।

लखपतराय ने मुस्कराकर कहा, 'रामदास, नुमाइश की जीत के लिए बधाई !'

रामदास का हृदय कांप गया। यह ताना है या बधाई। उसने धीमे से सिर्फ इतना ही कहा, 'यह हुजूर की मेहरबानी है।'

अब ज़मींदार ने खूब गम्भीर होकर कहा, 'रामदास, मैं सचमुच तुम्हारे बैल से बहुत प्रसन्न हूं। मैं उसे तुमसे खरीद लेना चाहता हूं। मुझे मालूम हुआ है कि वह बैल तुम्हारे यहां बिलकुल निठल्ला रहता है, इसलिए मुझे उम्मीद है कि उसे बेचने में तुम आनाकानी न करोगे।'

रामदास कांप गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया।

ज़मींदार ने कहा, 'बोलो, चुप क्यों हो ?'

रामदास धीरे से बोला, 'हुजूर, आपके पास जानवरों की क्या कमी है ! उस बैल को मैं बेचना नहीं चाहता।'

'तुम्हें उसके बदले मुंहमांगा दाम मिलेगा।'

'मैं उसे किसी भी दाम पर बेचना नहीं चाहता हुजूर, मैं तो खुद भी आप ही की जायदाद हूं।'

ज़मींदार ने अब प्रलोभन देने का प्रयत्न किया, 'मैं सदा के लिए

तुम्हारा लगान माफ कर दूंगा।'

रामदास ने नकारात्मक उत्तर दिया।

ज़मींदार इसपर भी निराश नहीं हुआ। अब उसने अपने ब्रह्मास्त्र का वार किया, 'तुम्हें यह बैल मुझे बेच देना होगा।'

रामदास चुप रहा।

ज़मींदार ने फिर कहा, 'सीधी तरह से नहीं दोगे, तो फिर किसी और उपाय से दोगे।'

ज़मींदार की यह बात सुनकर रामदास को क्रोध तो बहुत आया, उसका जानवर है, वह चाहे बेचे, चाहे न बेचे; पर मुंह से उसने कुछ नहीं कहा।

ज़मींदार ने कहा, 'अच्छा, जाओ। मैं देख लूंगा कि तुम कब तक मेरी बात से इन्कार करते हो।'

उस दिन के बाद से अभागे रामदास पर ज़मींदार ने सख्ती करना शुरू किया। उससे कठिन बेगार ली जाने लगी। बेगार ऐसी ली जाती थी कि गोरा को दिन-रात काम में लगे रहना पड़े। कभी-कभी अकेले गोरा को ही बेगार में मांग लिया जाता था। रामदास के दरिद्र परिवार पर यह एक नई आफत आ खड़ी हुई। परन्तु फिर भी रामदास ने पराजय स्वीकार नहीं की। अपनी किस्मत और भगवान के भरोसे रामदास यह सब अत्याचार सहने लगा।

जंगल से लकड़ियां काटकर गांव की तरफ लौटते हुए रामदास कांप उठा। अचानक आसमान काले-काले बादलों से घिर आया था। रामदास को जिस बात का भय था, आखिर वही हुई। इस चौमासे के दिनों में गांव से तीन-चार मील दूर एक बरसाती नाला पार कर लकड़ियां काटने जाना सचमुच एक बड़े जोखिम का काम था। बरसात के कारण नाले का कोई विश्वास नहीं था, वह न जाने कब भरकर बहने लगे। आज प्रातःकाल लखपतराय ने रामदास को इसी जंगल से बेगार में

लकड़ियां काट लाने का आदेश दिया था। रामदास जब घर से चला था, तब आसमान साफ था; और नाले में भी बहुत कम पानी था। परन्तु सांझ के समय ज्योंही गड्डे में लकड़ियां भरकर वह लौटने को तैयार हुआ, त्योंही इन्द्र देवता की सेना ने एकसाथ आकाश-मण्डल पर चढ़ाई कर दी।

रामदास ने रास हिलाकर गोरा को भागने का संकेत दिया। बरसाती नाला इस स्थान से चार-पांच फर्लांग ही दूर था। रामदास की इच्छा थी कि वह जिस किसी तरह भागकर गड्डे सहित इस नाले के पार पहुंच जाए। उसके बाद देखा जाएगा। परन्तु इस समय तक वर्षा बड़े ज़ोर से शुरू हो गई थी। नाले के रेतीले किनारे पर पहुंचकर रामदास ने बड़े दुःख के साथ देखा कि नाला खूब भरकर वह रहा है। रामदास निराश हो गया। अब कई घण्टों तक इस पार बैठे रहने को वह बाध्य था। वर्षा की बौछार रामदास के शरीर पर खुले रूप में पड़ रही थी, इसलिए वह गड्डे से उतरा। उसने गोरा को गाड़ी से खोलकर उसे किनारे पर की हरी-हरी घास चरने के लिए छोड़ दिया। इसके बाद गड्डे की लकड़ियों को उसने कुछ ऐसे ढंग से लगा दिया कि उनके अन्दर एक खोह-सी बन गई। इस खोह के ऊपर अपनी चादर फैलाकर, वर्षा से बचने के लिए रामदास अन्दर बैठ गया।

सहसा गर्दन उठाकर गोरा एक बार बड़े ज़ोर से गरज उठा। गोरा की यह गरज सुनकर रामदास भय से सिहर उठा। धड़कते हुए दिल से उसने अपनी खोह में से सिर बाहर निकाला। देखा, गोरा अब भी पहले ही की तरह निश्चिन्तता से हरी-हरी घास चर रहा है। वर्षा इस समय भी कम नहीं हुई। नाले के मटियाले पानी में वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदें पड़कर उसे विक्षुब्ध कर रही हैं। इन बूंदों की मार से मानो वह नाला बौखला-सा उठा है। रामदास ने जंगल की तरफ मुड़कर देखा—चारों ओर सन्नाटे का राज्य है। केवल वर्षा पड़ने की सांय-सांय आवाज़ इस निस्तब्धता को भंग कर रही है। जंगल के हरे-भरे वृक्ष वर्षा में एकसाथ

चुपचाप स्नान कर रहे हैं। रामदास ने फिर से अपना सिर खोह में छिपा लिया। इस नीरव सन्नाटे में उसे कुछ-कुछ भय प्रतीत होने लगा।

थोड़ी देर में बादल फट गए। वर्षा बन्द हो गई। पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष निकल आया। सूर्य डूबने में अब अधिक समय नहीं रहा था। सूर्य की अन्तिम किरणों ने बादलों में अनेक रंग पोत दिए थे। उनके प्रतिबिंब से बरसाती नाले का पानी भी पिघले हुए सोने की उज्ज्वल धार के समान प्रतीत होने लगा। जंगल में मोर बोलने लगे। प्रकृति का सन्नाटा भंग हो गया। चारों ओर का दृश्य स्वर्गीय हो उठा। परन्तु बेगार में पकड़े गए रामदास का ध्यान इन दृश्यों की ओर नहीं था। वह बड़ी उत्कंठा से नाले का पानी कम हो जाने की प्रतीक्षा कर रहा था।

धीरे-धीरे नाले का पानी भी उतर गया। अब रामदास की जान में जान आई। गोरा को गड्डे में जोतकर वह फिर से अपनी खोह में आ बैठा, और रास हिलाकर उसने गोरा को चलने की आज्ञा दी। सामने सूर्य अस्त हो रहा था।

किनारे के उस हरे मैदान से उतरकर गोरा नाले के रेतीले तट पर पहुंचा। परन्तु पानी के निकट पहुंचते ही गोरा किसी चीज को देखकर सहसा चौंक उठा। उसके पैर जैसे आप से आप क्रियाशून्य हो गए। गाड़ी रुक गई।

रामदास फिर से कांप उठा। डरते-डरते खोह में से उसने अपना मुंह बाहर निकाला। नाले की ओर देखते ही उसके होश गुम हो गए। उसने देखा, 'उत्तर की ओर, गड्डे से करीब बीस गज ही दूर, एक बड़ा-सा शेर खड़ा है और वह गड्डे की ओर देखकर गुर्रा रहा है!'

अगले ही क्षण शेर बड़ी जोर से गरज उठा। उसकी गरज समीप-स्थित पहाड़ी के साथ टकराकर गूंज उठी। पास के जंगल में फिर से सन्नाटा छा गया।

रामदास उसी प्रकार अनिमेष नेत्रों से शेर की तरफ देखता रहा। परन्तु शेर ने अभी तक उसकी तरफ नहीं देखा था, वह गोरा के श्वेत-

श्वेत और मोटे-ताज़े जिस्म को देखकर ही गुर्रा रहा था। शेर की भयंकर गरज सुनकर गोरा कांप उठा। वह बड़े करुण स्वर में चिल्लाया, 'बां ! बां !!'

इसी समय शेर धीरे-धीरे बड़ी शान से कदम बढ़ाता हुआ गोरा की तरफ बढ़ा। रामदास इस समय भी खोह से गर्दन बाहर निकाले रखकर शेर की ओर देख रहा था। यदि वह अब भी चाहता तो खोह में छिपकर अपनी जान बचा सकता था।

शेर को अपनी तरफ बढ़ता हुआ देखकर वह अबोध जानवर अत्यधिक करुण स्वर में फिर चिल्लाया, 'बां ! बां !!'

गोरा का यह करुण स्वर सुनकर रामदास सहसा विचलित हो उठा। उसे स्मरण हो आया—आज से तीन वर्ष पूर्व गोरा की यही करुण 'बां बां' सुनकर ही मैंने उसकी गीदड़ों से रक्षा की थी, क्या आज मैं उसे शेर के मुंह से नहीं बचा सकता ?

इसी समय शेर फिर गरजा और इत्मीनान के साथ गोरा की ओर बढ़ा। रामदास ने यह सब देखा और एकाएक वह कूदकर गोरा की पीठ पर लिपट गया ! अगले ही क्षण वह शेर एक बार फिर बड़े ज़ोर से गरजकर गोरा पर झपटा, परंतु उसके तेज नाखून गोरा के भरे हुए शरीर में न धंसकर रामदास की सूखी हुई पीठ में जा धंसे।

शेर ने इसी शिकार को पर्याप्त समझा। वह दरिद्र परन्तु आश्रित-वत्सल रामदास की पवित्र देह को लेकर जंगल में प्रविष्ट हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल रामदास के रिश्तेदार उसे ढूंढ़ते हुए वहां पहुंचे। गोरा अब भी उसी तरह निश्चल भाव से खड़ा था। गड्डे की खोह के ऊपर रामदास की मैली चादर अब भी उसी तरह फैली हुई थी। गोरा की पीठ पर खून के बड़े-बड़े दाग और रेत पर शेर के पंजों के बड़े-बड़े निशान देखकर उन्हें सारी घटना समझने में देर न लगी।

रामदास का यह आत्मबलिदान आसपास के सब गांवों में प्रसिद्ध

है। लोग उसका नाम बड़ी श्रद्धा से लेते हैं। गोरा आज भी जीवित है, परन्तु अब वह इतना मजबूत नहीं रहा। लोग कहते हैं कि स्वामी के शोक में वह दिन-प्रतिदिन घुलता चला जा रहा है। लखपतराय भी अपने व्यवहार पर शर्मिन्दा है। उस दिन के बाद से फिर कभी उसने गोरा के लिए आग्रह नहीं किया।

आंसू

स्वर्गलोक भर में बुद्ध देवता हंसी और मखौल के पात्र बने हुए थे। उनके छोटे कद और चौड़े डील-डौल के कारण, जो देवता उन्हें देखता था, उनपर कोई न कोई आलोचना करने के लोभ का संवरण न कर सकता था। विशेष रूप से देवराज इन्द्र की सभा में उनके प्रवेश करते ही सदस्यों के हास्य का फव्वारा छूट पड़ता। जब वे सभा में प्रवेश करते, तब सारी सभा खिलखिलाकर हंस उठती। प्रतिदिन देवराज इन्द्र स्वयं बुद्ध से विचित्र-विचित्र प्रश्न कर उन्हें खूब परेशान किया करते थे। इस प्रश्नोत्तरी से तंग आकर जब बुद्ध खीझ उठते थे, तब उनका चेहरा और उनके हाव-भाव देखने योग्य हो जाते थे। देवताओं को बुद्ध का यह खीझना बहुत ही पसन्द था; इन्द्र प्रायः उनकी इस इच्छा को पूर्ण किया करते थे।

बुद्ध शान्तस्वभाव चन्द्र के पुत्र थे। चन्द्रदेव को अपने एक मात्र पुत्र की यह दशा बहुत अखरती थी। परन्तु वे लाचार थे। देवराज इन्द्र के सामने भला वे क्या कर सकते थे? इसलिए, वे मन मारकर चुपचाप अपने पुत्र के इस भयंकर अपमान को सहन कर लिया करते थे।

एक दिन देवराज इन्द्र मात्रा से अधिक सुरा-पान कर गए। प्याले पर प्याला चढ़ाते-चढ़ाते वे बिलकुल ज्ञानशून्य हो गए। इसी अवस्था में उन्होंने सुरा-पात्र को उछालकर दूर फेंक दिया। बुद्ध उनके सामने ही बैठे थे; देवराज ने बड़े कर्कश स्वर में उनसे कहा, 'ओ बुद्धू! जा, सुरा-पात्र उठा ला।' एक देवता को इस प्रकार की आज्ञा देना उसका

घोर अपमान करना था ; अतः बुद्ध अपने स्थान से नहीं हिले ।

बुद्ध के पिता चन्द्र भी पास ही बैठे थे, वे पुत्र का यह भयंकर अपमान न सह सके । उन्होंने बिगड़कर कहा, 'इन्द्र ! होश संभालकर बात करो ।'

चन्द्रदेव जोश में आकर यह बात कह तो बैठे, परन्तु दूसरे ही क्षण अपने दुस्साहस के परिणाम को सोचकर उनका हृदय कांप उठा । इतने में ही कुपित देवराज ने गरजकर कहा, 'क्या बकता है छोकरे ! अभी पतित होकर मर्त्यलोक में जन्म ले ।'

चन्द्रदेव के मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं । इतनी छोटी-सी अवज्ञा का इतना भयंकर दण्ड !

सारी सभा में सन्नाटा छा गया । सब देवता यह सुनकर कांप गए, परन्तु देवराज से कुछ कहने की हिम्मत किसीको न हुई । केवल गुरु बृहस्पति इस अवस्था में जरा भी न घबराए । उन्होंने खूब गम्भीर होकर देवराज इन्द्र को उपदेश देना प्रारम्भ किया । बृहस्पति की बादल की गरज के समान गम्भीर वाणी के प्रभाव से शीघ्र ही देवराज का नशा उतर गया । चेतनावस्था में आकर उन्हें अपने कार्य का अनौचित्य स्पष्ट दीखने लगा । थोड़ी देर में खूब शान्त होकर उन्होंने कहा, 'जाओ चन्द्रदेव, मेरा शाप नहीं टल सकेगा । मर्त्यलोक में जाओ और वहां की सर्वोत्कृष्ट वस्तु लाकर मुझे दो । उस वस्तु में स्वर्गलोक की मधुरता हो, पापियों को कंपा देने की वह शक्ति रखती हो , वह सबसे अधिक करुणा-पूर्ण और पवित्र हो, वह आदर्श प्रेम का उज्ज्वल और मधुरतम स्वरूप हो । जाओ चन्द्र, मर्त्यलोक में जाकर मेरे लिए शीघ्र ही ऐसा उपहार ढूंढ़ लाओ । तब मेरा यह शाप समाप्त हो जाएगा ।'

चन्द्रदेव अभी तक थरथर कांप रहे थे ।

खूब तपी हुई वालुका पर वह गौरवर्ण देवदूत बिलकुल नग्न दशा में बैठा था । गरम लू चल रही थी ; कहीं हरियाली का नाम भी नहीं

था। दूर पर श्यामल वर्ण के कुछ वृक्ष अस्पष्ट रूप में दिखाई पड़ रहे थे। देवदूत—निर्वासित देवदूत—इस दशा में अत्यन्त कष्ट अनुभव कर रहा था। जिस मर्त्यलोक को वह अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना से प्रतिदिन शीतल किया करता था, वह लोक इतना गरम, इतना नीरस और शून्य होगा, आज से पूर्व इसकी उसे कल्पना भी न थी। देवदूत का शरीर जल रहा था, पर उसमें मनुष्यों की अपेक्षा बहुत अधिक सहन-शक्ति थी, अतः ऊपर अनन्त नीले आकाश की ओर आंखें किए हुए वह पड़ा रहा। शायद वह तृषित नेत्रों से स्वर्ग की ओर ताक रहा था।

सहसा देवदूत को अपना कर्तव्य याद आया। वह उठ खड़ा हुआ और सोचने लगा कि इस नीरस-निर्जन मर्त्यलोक में से मैं देवराज का वांछित उपहार कहां प्राप्त कर सकूंगा? परन्तु उसे प्राप्त किए बिना भी तो काम नहीं चलेगा। वह दूर दिखाई देनेवाले वृक्षों के झुरमुट की ओर चला। वहां पहुंचकर उसने देखा कि वृक्षों के पास ही मटियाले रंग के विविध प्रकार के सैकड़ों स्तूप-से बने हुए हैं। देवदूत पहले-पहल यह निर्धारित न कर सका कि ये क्या हैं। परन्तु थोड़ी देर बाद, जब अपना कौतूहल शान्त करने के लिए, वह एक स्तूप के पास गया, तब उसे मालूम हुआ कि ये मिट्टी के बेढंगे ढेर इस अभागे लोक के निवासियों के घर हैं। चन्द्रदेव बिना किसी प्रकार की झिझक के एक मकान में प्रविष्ट हो गए।

मकान के दालान की बाईं ओर एक बरामदा था। इस बरामदे में तीन चारपाइयां बिछी हुई थीं। एक चारपाई पर बिछे हुए मैले-कुचैले कपड़ों पर एक छः बरस का बालक लेटा हुआ था; शेष दो पर एक वृद्ध स्त्री और एक वृद्ध पुरुष लेटे हुए थे। ये सब प्राणी सर्वथा क्षीण, दीन और दुर्बल थे। बालक की शय्या बीच में थी और वृद्धा तथा वृद्ध उसके दोनों ओर लेटे हुए थे। बालक बड़े करुण स्वर में 'हाय, हाय' कर रहा था। दोनों वृद्ध पति-पत्नी बड़ी व्यथा से उसकी ओर देख रहे थे। विचित्र दृश्य था। चन्द्रदेव बहुत ही आश्चर्य तथा दुःख में पड़ गए।

ओह ! मर्त्यलोक के निवासी इतने हीन, क्षीण और शक्तिरहित होते हैं ! थोड़ी देर में बालक रोती हुई आवाज़ में चिल्लाकर पुकार उठा, 'पानी, पानी !' दोनों वृद्ध व्यक्तियों ने, मानो बालक की आवाज़ को प्रतिध्वनित करते हुए, क्षीण स्वर में धीरे से कहा, 'पानी, पानी !'

देवदूत को अब पूरी बात समझने में देर न लगी। वह स्वर्गलोक में अनेक बार मर्त्यलोक के भयंकर अकालों का वर्णन सुन चुका था; परन्तु इन कष्टों की इतनी भीषणता की उसे कल्पना भी न थी। बात यह थी कि इस वर्ष फारस देश में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। अन्न तो क्या, कहीं पानी का भी नामो-निशान न था। ये तीनों अभागे प्राणी इसी दुर्भिक्ष के शिकार थे। तीनों प्यासे थे, तथापि दोनों वृद्ध व्यक्तियों को अपनी अपेक्षा पुत्र की प्यास बुझाने की अधिक चिन्ता थी; परन्तु वे लाचार थे, कुछ हो ही नहीं सकता था। चन्द्रदेव हृदय थामकर यह करुण दृश्य देखते रहे, उन्हें मर्त्यलोक में किसी जीव की सहायता करने का अधिकार नहीं था।

थोड़ी देर बाद बालक फिर से चिल्लाया, 'पानी, पानी !' परन्तु इस बार उसका स्वर पहले की अपेक्षा बहुत क्षीण था। शायद बालक की निष्पाप आंखों ने उसकी मांग पूरी करने का यत्न किया। उसकी आंखों के दोनों गड्ढे आंसुओं से भर गए। थोड़ी ही देर में बालक को हिचकी आई, इसके बाद उसकी देह प्राणशून्य हो गई। दोनों वृद्ध पति-पत्नी नितांत निस्सहाय और अशक्त दशा में अनिमेष नेत्रों से अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्र की ओर देखते रह गए।

देवदूत एकदम प्रफुल्लित हो उठा। इस प्रसन्नता का कारण स्पष्ट था। उसने शीघ्रता से मृत बालक के आंसुओं का संग्रह कर लिया और इसके बाद वह अपने शुभ्र पंखों की सहायता से स्वर्गलोक को चला गया।

देवराज इन्द्र स्नान-ध्यान समाप्त करने के अनन्तर सभा-भवन की

ओर जा ही रहे थे कि चन्द्रदेव ने आकर उन्हें प्रणाम किया। चन्द्र के हाथों में क्या चीज है, यह देखते ही देवराज उसकी सारी कथा स्वयं जान गए। उन्होंने धीरे से कहा, 'श्रेष्ठ होते हुए भी यह मर्त्यलोक का सर्वोत्कृष्ट उपहार नहीं है चन्द्रदेव! एक बार पुनः मर्त्यलोक को जाओ!'

चन्द्रदेव मन मारकर रह गए।

एक ऊंची अट्टालिका की छत पर से चन्द्रदेव उन प्रेमी और प्रेमिका की बातें सुनने लगे। प्रेमिका ने अपनी आवाज को स्थिर कर धीरे से कहा, 'प्रियतम, मातृभूमि शत्रुओं से घिरी हुई है।'

'सो मैं जानता हूं,' कहकर वह अपनी प्रेमिका के मुंह की ओर देखने लगा।

युवती कुछ कहना चाहती थी, परन्तु लज्जावश वह उसे कहते-कहते रुक जाती थी। उसकी अन्तरात्मा बार-बार जिस बात को उसके गले तक लाती थी, उसका हृदय उसे मुंह से बाहर निकलने का अवकाश न देता था। दोनों एक दूसरे से आलिंगनबद्ध दशा में थोड़ी देर तक चुप-चाप बैठे रहे। इसके बाद प्रेमिका ने बड़े यत्न से कहा, 'प्रियतम हेरिस, कल शायद हमारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता का अन्तिम दिन है; इसके बाद पराधीनता का घना अन्धकार हमारी मातृभूमि फ्रांस को सदा के लिए आच्छादित कर लेगा।'

नवयुवक हेरिस इसपर भी कुछ न बोला। उसने एक बार अपनी प्रेमिका की ओर देखकर ठण्डा श्वास लिया। मानो वह कह रहा था—प्रिये, अभी तो हमें परस्पर मिले थोड़े ही दिन हुए हैं। क्या इतनी जल्दी इस स्नेह-बन्धन का विच्छेद कर देना पड़ेगा?

थोड़ी देर और चुप रहने के बाद प्रेमिका ने फिर कहा, 'प्रिय हेरिस, मैं चाहती हूं कि मैं भी तुम्हारे साथ मातृभूमि के शत्रुओं का मुकाबला करने चलूं।'

यह वाक्य कहते हुए उसका स्वर कांप रहा था। नवयुवक हेरिस डरपोक नहीं था। अपनी प्रेमिका की अन्तिम बात सुनकर उसकी अस्थिरता दूर हो गई। उसने शीघ्रता से अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। इसके बाद दोनों प्रेमी एक दूसरे से अत्यन्त निकटता के कारण बहुत धीमे स्वर में कितनी ही प्रेम-भरी बातें करते रहे। चन्द्रदेव उन सब बातों को रस लेकर सुन रहे थे।

सारी रात दोनों प्रेमी बिलकुल नहीं सोए। उनकी बातों का कभी समाप्त न होनेवाला अक्षय कोष प्रातःकाल के नवीन सूर्य की नरम किरणों के प्रकाश के साथ समाप्त हुआ। नवयुवक हेरिस की विदाई का समय आ गया था।

अन्त में धीरस्वभाव हेरिस ने ठण्डी आह भरकर अनिश्चित काल के लिए अपनी प्रेमिका से विदा ले ली। जब तक वह दिखाई देता रहा, प्रेमिका दरवाजे पर खड़ी होकर अनिमेष नेत्रों से उसे निहारती रही और नगर के राजमार्ग पर जाते हुए हेरिस को रूमाल हिला-हिलाकर प्रेम-संदेश देती रही।

जब नवयुवक हेरिस बहुत दूर जाकर, प्रातःकाल की धुंध में लीन होकर, प्रेमिका की आंखों से ओझल हो गया, तब उस देवी ने दूर धुंधले परन्तु शून्य आकाश की ओर देखते रहकर एक ठण्डी सांस ली; इसके साथ ही उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से दो बूंद आंसू टपककर उसके गुलाबी चेहरे पर से ढुलकते हुए नीचे की ओर खिसक गए। चन्द्रदेव अभी तक शान्त होकर यह दृश्य देख रहे थे। उन्होंने अदृश्य रूप से पास आकर पवित्र प्रेम की पुण्यस्मृतिस्वरूप उन आंसुओं को चुरा लिया। इसके बाद वे अपने पंखों की सहायता से स्वर्ग की ओर उड़ गए।

देवराज इन्द्र बड़ी गम्भीरता से गुरु बृहस्पति का प्रातःकालीन उपदेश सुन रहे थे। इतने में चन्द्रदेव वहां आ पहुंचे। उन्होंने बड़ी नम्रता से देवराज को नमस्कार किया, परन्तु देवराज ने एक बार चन्द्र की ओर

देखकर बड़ी शान्ति से केवल इतना ही कहा, 'चन्द्र ! तुम्हारा यह उप-हार सचमुच बहुत उत्कृष्ट है, तथापि यह मर्त्यलोक की सर्वोत्कृष्ट वस्तु नहीं है। एक बार पुनः तुम्हें मर्त्यलोक में जाना होगा।'

चन्द्रदेव का दिल टूट गया। वे मर्त्यलोक के भयंकर चित्र की कल्पना कर कांप उठे।

एक सुन्दर बाग में सोने का एक पिंजरा टंगा हुआ था। चारों ओर विविध रंगों के बड़े-बड़े फूल खिले हुए थे। ठण्डी हवा चल रही थी; हरे-हरे वृक्षों के पत्तों से मधुर शब्द उत्पन्न हो रहे थे। पिंजरे के अन्दर किशमिश, अंगूर, अनार आदि फल पड़े हुए थे। इस पिंजरे में एक काबुली तोता, जिसके गले पर लाल रंग की कुण्डली बनी हुई थी, सिर नीचा किए बैठा था।

भारत-सम्राट ने अपनी कन्या अपराजिता के लिए खास काबुल से यह तोता मंगवाया था। अपराजिता इस तोते को बहुत प्यार करती थी; उसे सब प्रकार से सुखी करने का प्रयत्न करती थी। परन्तु वह कभी प्रसन्न न होता था। अपराजिता के प्रेम के प्रभाव से, वह उसके रटाए हुए वाक्य तो अवश्य सुना देता था, परन्तु उसका मन सदैव उदास रहता था। इस बात को राजकुमारी अपराजिता भी जानती थी कि यह काबुली तोता इस रमणीक उद्यान को कन्दहार की सूखी पहाड़ियों के सामने कुछ भी मूल्यवाला नहीं समझता।

सांझ का समय था; लताकुंज में लटके हुए पिंजरे में वह काबुली तोता सिर नीचा किए बैठा था। इसी समय चन्द्रदेवता उसके पास आकर खड़े हो गए। आज भारत-सम्राट के इस सुन्दर उद्यान को देखकर उनकी यह धारणा नष्ट हो गई कि मर्त्यलोक सर्वथा नीरस है। सहसा एक कुंज की घनी छाया के नीचे पिंजरे में बैठे हुए तोते पर उनकी नज़र पड़ी। पहली ही नज़र में उसकी शोकमग्नता उनसे छिपी न रही। वे चुपचाप खड़े होकर उसकी ओर देखने लगे।

ठीक इसी समय पश्चिम दिशा से एक और तोता आकर पिंजरे के पासवाले मौलश्री के पेड़ पर बैठ गया। इस तोते के गले पर भी लाल रंग का कुण्डल बना हुआ था। वृक्ष पर बैठते ही तोता चिल्ला उठा, 'टीं, टीं !' पिंजरे में बैठे हुए तोते की मानो सहसा नींद टूट गई। वह झुकी हुई गर्दन को उठाकर बैठ गया और सामनेवाले मौलश्री के पेड़ पर बैठे हुए अपने देशबन्धु की ओर देखकर कातर स्वर से वह भी पुकार उठा, 'टीं ! टीं !!'

चन्द्रदेव ने देखा कि अपने देशवासी को देखकर पिंजरबद्ध तोते में जैसे नवजीवन का संचार हो गया है। वह पिंजरे में ही फड़फड़ाकर उड़ने का प्रयत्न कर रहा है। काबुल की ओर से आया वह स्वच्छन्द तोता इस पिंजरबद्ध तोते के अत्यन्त निकट चला आया। बहुत देर तक दोनों तोते जैसे आपस में बातें करते रहे। इन्हीं कुछ क्षणों में पिंजरबद्ध तोता जैसे एकाएक नया व्यक्ति बन गया था।

एक क्षण आया, जब स्वच्छन्द तोता आकाश में उड़ गया और पिंजरबद्ध तोता निढाल-सा होकर बैठ रहा ; नितान्त एकाकी। उसके दिल में जैसे भारी टीस उठी हो। धीरे-धीरे उसकी आंखें आंसुओं से भर आईं और क्रमशः दो आंसू टपककर बाग की धूल पर जा गिरे।

शीघ्रता से आगे बढ़कर चन्द्रदेव ने अश्रुसिक्त वह धूल उठा ली और उसे माथे से लगाकर वे स्वर्गलोक की ओर चले गए।

देवराज इन्द्र खुले उद्यान में बैठकर स्वर्ग की अप्सराओं का नृत्य देख रहे थे कि चन्द्रदेव ने आकर मरकटमणि-निर्मित हलके नीले रंग के बरतन में रखी वह अश्रुजल-मिश्रित भू-रज उनके सामने रख दी। उसे देखते ही देवराज जैसे सभी कुछ समझ गए। उस भू-रज से अपने मस्तक का अभिषेक करते हुए जलद-गम्भीर स्वर में उन्होंने कहा, 'चन्द्रदेव, अब तुम शापमुक्त हुए !'

उत्तेजना

दुपहर का खाना सुबह-सुबह ही खाकर एक वसूली करने के बहाने हमीद जो घर से बाहर निकला, तो शाम के सात बजे तक उसने घर वापस आने का नाम ही न लिया। हमीद एक गरीब पठान का नौजवान बेटा है। बिलकुल निकम्मा और बाप की निगाह में आवारागर्द। हाल में ही उसकी शादी हुई है। मां-बाप का ख्याल था कि शादी शैतान को इन्सान बना देती है और इन्सान को घर का पालतू जानवर। सो दो-तीन सौ रुपया खर्च कर उन्होंने सरहद के किसी किसान की एक सुन्दरी और हृष्ट-पुष्ट कन्या से हमीद का विवाह कर दिया था। मगर हमीद पर इस विवाह का कोई लाभप्रद प्रभाव नहीं पड़ा। वह इन्सान से जानवर भले ही बन गया हो, परन्तु वह पालतू हर्गिज़ नहीं बन पाया।

भाग्यवश हमीद की पत्नी सुन्दर है और लाहौर में आकर उसे अपने जीवन में पहली बार कुछ-कुछ समझ आने लगा है कि वह अपने सौन्दर्य को किस तरह आकर्षक और उग्र बना सकती है। परन्तु इस बात के लिए चाहिए पैसा, और हमीद के बाप के पास भले ही पैसा हो, उस बेचारे के पास पैसे का नितान्त अभाव है। परिणाम यह हुआ कि हमीद अपनी पत्नी के दिल में अपने लिए आदर और प्रतिष्ठा का स्थान नहीं बना सका।

हमीद का पिता एक मामूली सूदखोर पठान है। शेरांवाला दरवाज़े के बाहर, लकड़ी की एक बड़ी-सी टाल के निकट दो-तीन कच्ची-सी कोठरियों में, वह अपने बड़े-से परिवार के साथ रहता है। हिन्दुस्तान भर

में जिस तरह छोटे-छोटे पठान बैंकर सूदखोरी से अपना निर्वाह करते हैं, उसी तरह वह भी अपनी आजीविका चला रहा है। बहुत ऊंचे सूद पर छोटी-छोटी रकमें वह गरीब मज़दूरों या बेकार नौकरों को देता है। उनसे न वह रसीद लेता है, न दस्तावेज़ लिखवाता है और न गवाह ही जमा करता है। फिर भी क्या मजाल कि कोई उसका पैसा हज़म कर जाए! वह चाहता है कि हमीद भी यही पेशा अख्तियार करे। पर न जाने क्यों हमीद अपने को इस काम के लिए नितान्त अयोग्य पाता है। अर्सा हुआ, जब बाप की प्रेरणा पर कुछ छोटी-छोटी रकमें उसने अनेक लोगों को एक पाई प्रतिरुपया प्रतिदिन के सूद पर उधार दी थीं। परन्तु उन रकमों में से एक की भी वसूली वह आज तक नहीं कर पाया। पठान होते हुए भी वह न किसीको डरा सकता है, न धमका सकता है और न किसीपर रौब ही डाल सकता है, बल्कि ज़रा-सा गम्भीर होने का प्रयत्न करते ही उसके चेहरे पर मुस्कराहट छा जाती है। बात-बात पर वह हंस देता है। हमीद के दिल का प्रत्येक अच्छा या बुरा भाव मानो उसे गुदगुदी कर देता है और तब वह बरबस हंस पड़ता है। ऐसा आदमी भला वसूल-तह-सील क्या करता! हमीद के तीन आसामी तो चकमा देकर निकल गए, उसे फिर कभी उनकी सूरत ही नहीं दिखाई दी। चौथा आसामी जिसे उसने सबसे अधिक रकम दी थी, गुरु अर्जुननगर का रहनेवाला एक बनिया था। इस लाला की नोन-तेल की एक छोटी-सी दूकान थी। हमीद जब इस लाला के पास जाता तब वह मीठी-मीठी बातें बनाकर ऐसा टालता कि हमीद फिर हफ्तों तक उसके पास जाने की हिम्मत न कर सकता था।

सर्दी के दिन थे। सूरज डूबे काफी देर हो चुकी थी कि दरवाज़ा खोलकर हमीद अपने घर के भीतर दाखिल हुआ। दिन भर की जो कुढ़न उसकी पत्नी के चेहरे पर साफ तौर से अंकित थी, हमीद ने उसे देखा, समझा और वह घबरा गया। इसी समय उसके बाप ने पूछा, 'दिन भर कहां रहे हमीद?'

'वसूली करने गया था।'

'कहां ?'

'गुरु अर्जुननगर ।'

'उसी लाला के यहां ? उससे कुछ वसूल भी हुआ ?'

हमीद ने बड़े उत्साह के साथ कहा, 'बाबा, मैंने उसके यहां सात चक्कर लगाए, मगर लाला एक बार भी नहीं मिला। कुछ बदकिस्मती ऐसी रही कि जब-जब मैं उसकी दुकान पर गया, यही मालूम हुआ कि सिर्फ दो-चार मिनट हुए, वह अपने किसी काम पर गया है।'

'तुम्हें यह किस तरह मालूम हुआ ?'

'उसका छोटा पुत्र हर बार मुझे यही बताता था कि वह अभी-अभी अमुक काम पर गया है।'

बूढ़े बाप ने ज़रा खिन्नभाव से कहा, 'मैं सब समझता हूं हमीद ! ये लाला लोग जान-बूझकर हैरान करते हैं। ये लोग एक दिन में क्या, महीने भर में भी सात बार अपनी दुकान छोड़कर नहीं जाते। तुम्हारी आहट पाते ही नालायक वहीं कहीं छिप जाता होगा। तुम सारा दिन रहे कहां ?'

'सादिक के घर। मैंने सोचा था कि आज लाला से मिलकर ही घर वापस जाऊंगा।'

न जाने किस बात पर बूढ़े बाप को क्रोध हो आया। उसने बहुत ही आवेश में कहा, 'नालायक कहीं का ! सारा दिन सादिक के यहां ताश खेलता रहा, अब बातें बनाता है ! लाला से मिलकर ही आने का इरादा था, तो पठान-बच्चा होकर बगैर मिले चला कैसे आया ? हरामखोर, बुज़दिल कहीं का ! इतना भी नहीं समझता कि लाला तुझे देखकर कहीं भीतर छिप जाता होगा। मैंने सोचा था कि तेरी पहली वसूली के सूद से बहू को चांदी के कांटे खरीद दूंगा, मगर ऐसा निखट्टू पठान-बच्चा तो मैंने आज तक कहीं नहीं देखा।'

हमीद की पत्नी अपने कमरे के दरवाज़े पर खड़ी यह सब सुन रही थी। यह फटकार सुनकर उसके चेहरे पर अपने पति के लिए क्रोध के स्थान

पर सहानुभूति का भाव आ गया। हमीद ने आंख उठाकर चुपके से अपनी पत्नी की ओर देखा। उन सुन्दर आंखों के गीले छोर देखकर न जाने हमीद को क्या हो गया। अपने बाप की बात का जवाब दिए बिना ही वह घर से बाहर जाने को तैयार हो गया। शायद उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख अब अपनी पत्नी के कानों के कांटे झूम रहे थे।

बाप को यह देखकर खुशी हुई कि बेटा कुछ करने चला है, परन्तु पत्नी से नहीं रहा गया। उसने बाप की ओर घूंघट बढ़ाकर धीरे से आवाज़ दी, 'सुनो, इस वक्त कहां जाते हो? न हो कल सुबह चले जाना!'

चलते-चलते हमीद ने जवाब दिया, 'घबराओ नहीं। मैं अभी वापस आया।' और दरवाज़ा खोलकर वह घर से बाहर हो गया।

लाहौर की सरकुलर रोड पर धूल, कुहरे और धुएं का घना आवरण चढ़ा हुआ था। हमीद इसी सड़क पर से होकर तेज़ी से गुरु अर्जुननगर की ओर बढ़ा जा रहा था। राह की अधिकांश दुकानें बन्द हो चुकी थीं। लोग भारी ऊनी कपड़ों में अपना सिर-मुंह छिपाकर इधर-उधर आ-जा रहे थे।

दूर से ही लाला की दुकान पर रोशनी देखकर हमीद की खुशी का पारावार नहीं रहा। उसकी सम्पूर्ण नाराज़ी भी काफ़ूर हो गई और वह मुस्कराता हुआ-सा लाला की दुकान के सामने जा खड़ा हुआ।

लाला हमीद को दिन भर चराता रहा था। उसका छोटा बच्चा सी० आई० डी० के इनफार्मर का काम करता रहा था। जब उसे हमीद के आने की खबर मिलती, वह दुकान के पिछवाड़े के गन्दे-से पेशाबघर में चला जाता। दीया जलते ही जब हमीद अपने यार-दोस्तों सहित सैर पर निकल गया, तब उसकी जान में जान आई, और उसने राम का नाम लिया। दीये को नमस्कार कर उसने लोई ओढ़ी और कुछ ऊंचाई पर बिछी एक बोरी पर पालथी मारकर जा बैठा। अब इस वक्त अचानक हमीद को वहां देखकर लाला क्षण भर के लिए तो सन्न-सा रह गया।

खिसकना तो अब मुमकिन नहीं था, इससे लाला ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया, जैसे वह हमीद को पहचानता ही न हो। लाला पूरा घाघ था। मौका देखकर उसने पैंतरा बदल लिया।

हमीद ने मुस्कराकर कहा, 'क्या हाल है लाला साहब ?'

लाला ने हमीद की ओर ऐसी निगाह से देखा, जैसे वह उसे अपनी जिन्दगी में पहली ही मर्तबा देख रहा हो। उसने पूछा, 'कुछ खरीदना है ? क्या चाहिए ?'

हमीद ने हंसते हुए कहा, 'पैसे चाहिएं लाला !' और इसके बाद अट्टहास करते हुए वह बोला, 'ओफ्फो ! लाला साहब, आप मुझे पहचानते भी नहीं !'

लाला को जैसे आग लग गई, 'तेरा दिमाग तो ठिकाने है न ? पैसे मांगने आया है। कैसे पैसे ? चल यहां से ! दिया जला नहीं कि चट से पैसे मांगने आ गया। अभी बोहनी तक तो हुई नहीं। इन नालायकों को ज़रा भी तमीज नहीं।'

लाला यद्यपि बहुत क्रोध और गम्भीरता के साथ ये बातें कह रहा था, मगर हमीद को समझ न आया कि वह मज़ाक कर रहा है, टालना चाहता है, या इनकार कर रहा है। मगर टालना भी हो तो यह कौन-सा ढंग है ! उसने बड़ी शान्ति के साथ कहा, 'लाला, इस सर्दी में कहीं भांग तो नहीं खा गए ! मैं हमीद हूं, हमीद, जिससे पिछले साल तुमने पन्द्रह रुपये लिए थे। कुछ मालूम है ? पचीस रुपये तो अब सूद के ही हो गए ! तुम्हें शरीफ समझकर दो-चार महीने मैं आया नहीं। उसका अब यह नतीजा है !'

और यह सब कहते-कहते हमीद दुकान के फर्श पर चढ़ गया।

लाला को जैसे क्रोध का उन्माद हो आया। वह बकने लगा, 'वाह रे वाह, बड़ा आया है धन्ना सेठ ! है कोई लिखत-पढ़त तेरे पास ? तेरे जैसे जूतीचोरों से मैं उधार लूंगा ! चल, भाग यहां से ! नहीं तो हड्डी-पसली सब एक कर दूंगा। बड़ा हमीद का बच्चा बना फिरता है। वाह रे वाह !'

हमीद को अब भी क्रोध नहीं आया और आखिरी बात सुनकर तो उसे बरबस हंसी आ गई। दुकान के फर्श पर एक बड़ा-सा हथौड़ा पड़ा था, योंही बिलकुल अचानक उसे उठाकर उछालते-उछालते हमीद हंसी-हंसी में कहने लगा, 'लाला साहब, आपने नशा करना कब से शुरू किया? भलेमानस, कुछ संभलकर तो पिया करो। मैं हमीद का बच्चा नहीं हूं, खुद हमीद हूं।'

लाला अपने दोनों हाथ दसों दिशाओं में फटकारता हुआ कहने लगा, 'हरामजादा, पाजी का बच्चा, मुझे शराबी बनाता है। अभी पुलिस को बुलाता हूं। जूतीचोर कहीं का! ठहर, तेरी खबर लेता हूं।'

हमीद एकाएक गम्भीर हो गया। परन्तु अब भी पूरी शान्ति के साथ उसने कहा, 'गालियां मत बको लाला! कहे देता हूं। वर्ना पछताओगे।'

अब लाला उछलकर खड़ा हो गया। उसका मुंह बिजली की तेजी से चल रहा था, 'ठहर साले, तू भी क्या याद रखेगा, कभी तुझे भी लाला घसीटामल से साबका पड़ा था!'

और तब मां-बहिन की गालियां बकता हुआ वह हमीद की ओर बढ़ा। हमीद को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे लाला उसपर आक्रमण कर रहा है। लाला का यह उग्र रूप इतना आकस्मिक था कि क्षण भर के लिए घबराकर हमीद पीछे की ओर हटा, पर दूसरे ही क्षण एकाएक जैसे उसका खून खौल उठा। उसके बाद क्षणार्ध की भी देर नहीं हुई और लोहे का वह भारी हथौड़ा हमीद के बलिष्ठ हाथों से गति पाकर पूरे ज़ोर के साथ लाला के सिर से जा टकराया। लाला धड़ाम से उसी जगह चित गिर पड़ा। उसे चिल्लाने का भी समय नहीं मिला। एकाएक लाला को इस तरह चुप हो गया देखकर उसका छोटा पुत्र चिल्लाया तो पल भर के लिए हमीद किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रह गया। उसके बाद आगे बढ़कर उसने लाला को उठाया। शोर-गुल सुनकर जो थोड़े-से लोग इस सर्दी में भी दुकान के बाहर आ जमा हुए थे, वे भीतर घुस आए। लाला के सिर से खून का परनाला-सा बह रहा था और दुकान

के सम्पूर्ण फर्श को भिगोता हुआ वह सामने की गन्दी नाली में टप-टप करके टपक रहा था। एक ही आघात से तत्क्षण लाला घसीटामल निष्प्राण हो गए थे।

हमीद की समझ में न आया कि बिलकुल अचानक यह सब क्या काण्ड हो गया! लाला मर गया है, यह देखकर भी यन्त्रचालित की तरह हमीद ने अपनी पगड़ी उतारी और उसे लाला के फटे हुए सिर पर बांधकर वह खून रोकने का प्रयत्न करने लगा। साधारण खूनियों के समान उसने भागने की कोशिश नहीं की, आत्मरक्षा के लिए भी उसने कोई प्रयत्न नहीं किया। कोई हिंसात्मक भावभंगी तक उसके चेहरे पर नहीं आई। 'या अल्ला!' को छोड़कर कोई आवाज़ तक उसके मुंह से नहीं निकली और यहां तक कि अत्यन्त सहज भाव से हो गई इस हत्या के लिए कोई बहाना तक सोचने का प्रयास भी उसने नहीं किया।

लाला का वह छोटा-सा अबोध पुत्र रो-रोकर ज़मीन-आसमान एक कर रहा था। दुकान के बाहर और भीतर तमाशबीनों की भीड़ क्रमशः बढ़ती जा रही थी। लोगों ने जब देखा कि 'खूनी' बिलकुल साधारण मनुष्यों के समान भलामानस-सा प्रतीत होता है, उसमें असाधारणता कुछ भी नहीं, तब उनके हौसले बढ़ गए। कुछ लोगों ने हमीद को घर दबाया और देखते ही देखते उसके हाथ-पांव कस दिए गए।

क्रमशः अर्जुननगर की वह ज़रा-सी दुकान आसपास के लोगों के लिए थिएटर-हाल से बढ़कर दिलचस्पी का केन्द्र बन गई। लाल पगड़ियां भी वहां काफी तादाद में पहुंच गईं और बहुत शीघ्र सब तमाशबीन दुकान से बाहर कर दिए गए। हमीद के हाथों में कड़ियां और पैरों में बेड़ी जकड़ दी गईं। खूनी रंगे हाथों पकड़ लिया गया था।

सादिक की मार्फत बहुत शीघ्र यह दुस्समाचार हमीद के बाप, चचा आदि को भी मिल गया। बीस-पचीस आदमी जमा हुए और वे सब एकसाथ ग्वालमण्डी के पुलिस-स्टेशन के सामने जा खड़े हुए। हमीद इसी थाने की कोठरी में बन्द कर दिया गया था। वह तो चुपचाप, गुमसुम,

हतज्ञान-सा बैठा था, परन्तु थाने के बाहर उसका बूढ़ा बाप दहाड़ें मार-मार-कर रो रहा था। आसपास के सभी मुहल्लों में भय का संचार हो आया था। लोगों ने गली-कूचों में घूमना-फिरना बन्द कर दिया और दस बजते न बजते उस सम्पूर्ण इलाके की सड़कों पर नीरवता और निर्जनता का साम्राज्य हो गया।

शहर भर को तो यह समाचार काफी अतिरंजना के साथ ज्ञात हो गया, परन्तु यदि किसीसे यह समाचार छिपाया गया था, तो हमीद के घर की स्त्रियों से। उन्हें यही बताया गया कि किसी सवारी के नीचे आकर हमीद के एक दोस्त को चोट लग गई है और वे सब लोग उसका हाल-चाल पूछने अस्पताल जा रहे हैं।

रात आधी के करीब बीत चुकी थी। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का चांद, बहुत समय हुआ, अस्त हो चुका था। आसमान में बादल नहीं थे, परन्तु धुंध और धुआं इतने जोरों का व्याप्त था कि कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देता था। सर्दी बहुत बढ़ गई थी। सब ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हमीद के पिता और रिश्तेदार अभी तक घर वापस नहीं आए थे। इस सर्दी और इस अन्धकार में एक नवविवाहिता युवती की दो आंखें, उस कच्चे मकान की देहरी से, सामने की धूलिधूसरित और अंधियारी-सी सड़क की ओर देख रही थीं। इस सड़क पर अभी तक मिट्टी के तेल के लैम्प जलते हैं। ये लैम्प आसपास की धुंध और पृथ्वी के धुएं के सम्मुख कब से अपनी पराजय स्वीकार कर चुके थे।

चारों ओर घोर नीरवता व्याप्त थी। कहीं दूर एक कुत्ता चीखती-सी आवाज़ में रो देता था। कहीं कुछ भी दिखाई न देता था। किसी अज्ञात आशंका से उस नारी की आंखों में आंसू भर आए थे और वह रह-रहकर सिहर उठती थी।

आधी रात बीत गई है। उसका हमीद वापस नहीं लौटा। क्या जाने वह कभी लौटेगा भी या नहीं!

कैफियत

ऋषि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थीं—गार्गी और मैत्रेयी। कहा जाता है कि ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य की इन दोनों पत्नियों में परस्पर सौतिया डाह नहीं था। सम्भव है कि यह बात सही हो। पर मेरे 'कल्पना-पुराण' में इस विवाह की जो कैफियत उतरी है, वह सचमुच एक बहुत दिलचस्प कहानी के समान है।

ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर युवा याज्ञवल्क्य ने एक ही विवाह किया था। वे अपनी पत्नी मैत्रेयी से इतने सन्तुष्ट थे कि दूसरा विवाह कर लेने का विचार तक भी कभी उनके मानस-पटल पर नहीं आ सकता था। पति-पत्नी दोनों में परस्पर इतना अधिक स्नेह और मैत्रीभाव था कि दूर-दूर तक वे एक आदर्श दम्पति के नाम से प्रसिद्ध थे।

विवाह के अनन्तर ऋषि याज्ञवल्क्य अपने वन-कुटीर में निर्बाध रूप से ब्रह्म-साक्षात् का अभ्यास किया करते थे। बहुत शीघ्र उनकी ख्याति भारतवर्ष भर में फैल गई। अपने युग के वे सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा-सम्पन्न ब्रह्मज्ञानी थे।

ऋषि याज्ञवल्क्य का सम्पूर्ण जीवन इसी तरह बड़े सुख के साथ व्यतीत हो जाता, यदि बरसों के बाद अचानक एक नई समस्या उनके सामने आकर खड़ी न हो जाती।

कार्तिक मास के पर्याप्त शीतल दिन थे। जंगल की घास सूख चुकी थी। चारों तरफ के वनों में स्थिर श्यामलता दिखाई देने लगी थी। प्रातःकाल का प्रथम प्रहर समाप्त हो चुका था। दैनिक अग्निहोत्र के बाद

मैत्रेयी ने व्रीहि का गरम-गरम भात, मक्खन और नीबूसहित उनके सामने लाकर परोस दिया। प्रभातिक सूर्य की खुली तथा नरम धूप में, यज्ञवेदी से नीचे बैठकर, याज्ञवल्क्य ने उसे उदरस्थ कर लिया। इसके बाद वे अपने बायें हाथ में खूब रगड़कर मांजा गया ताम्र का रक्ताभ जलपात्र थामे हुए, भात से सने दाहिने हाथ को वस्त्रों से बचाकर कुल्ला करने के उद्देश्य से अपनी कुटिया के परिवेष्टन के द्वार पर पहुंचे। अभी वे अपने दाहिने हाथ को गीला भी न कर पाए थे कि सहसा उनकी दृष्टि अपनी तरफ आती हुई एक युवती पर पड़ी। यह युवती अपनी वेश-भूषा से ब्रह्मचारिणी प्रतीत होती थी। उसके खुले हुए रूखे बालों की अस्त-व्यस्त लटें जिस मुंह के साथ खिलवाड़ कर रही थीं, वह मुंह असाधारण सौन्दर्य से पूर्ण था। सुविकसित, शुभ्र और उज्ज्वल गालों पर ललाई मानो फूटी पड़ रही थी। युवती की दृष्टि नीचे की तरफ थी, और देवकन्याओं के समान सुन्दर उसका मुख पवित्रता का मूर्तस्वरूप प्रतीत होता था। उसकी देह एक अत्यन्त सुघड़ स्वर्णमूर्ति के समान दिखाई दे रही थी।

ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य ने शीघ्र ही अपनी नजर उस ओर से हटा ली। उन्हें स्त्रियों के सामने जाते बड़ी लज्जा अनुभव होती थी, इसलिए आज इस अपरिचित सुन्दरी को अपनी तरफ आते देखकर उनके मुंह पर संकोच के भाव दिखाई देना स्वाभाविक ही था। इसी समय ब्रह्मचारिणी ने समीप आकर उन्हें श्रद्धा-भाव से नमस्कार किया।

दाहिने हाथ पर लगे हुए व्रीहि के भात को पानी की सहायता से उतारते हुए उन्हींपर अपनी दृष्टि जमाए रखकर, ऋषि याज्ञवल्क्य ने पूछा, 'कुछ काम है क्या ब्रह्मचारिणी ?'

ब्रह्मचारिणी ने अविचलित भाव से उत्तर दिया, 'हां भगवन् ! बिना काम के मैं इतनी लम्बी यात्रा क्यों करती !'

तब याज्ञवल्क्य ने आवाज़ दी, 'मैत्रेयी ! आर्ये मैत्रेयी !'

गृहस्वामिनी अगले ही क्षण बाहर आ पहुंची, और अपने स्वामी के

निकट एक अनिन्द्य सुन्दरी ब्रह्मचारिणी को खड़ा देखकर वह भी चकित हो गई। ऋषि-पत्नी को देखकर ब्रह्मचारिणी ने बड़े विनीत भाव से कहा, 'बहिनजी, नमस्ते !'

इस युवती को देखकर मैत्रेयी के दिल में सहज ही स्नेह का भाव उदय हो आया। वह बड़े प्रेम के साथ उसे अपनी कुटिया के अन्दर ले गई।

यथासमय याज्ञवल्क्य को अपनी पत्नी से मालूम हो गया कि उस ब्रह्मचारिणी का नाम गार्गी है, और अपनी प्रतिभा के लिए वह सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में प्रसिद्ध है। आयु में वह मैत्रेयी से भी दो वर्ष बड़ी है। यह ब्रह्मचारिणी ब्रह्मज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से ऋषि की सेवा में आई है। यह सब सुनकर ऋषि याज्ञवल्क्य गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गए और कुछ क्षण के बाद उन्होंने मैत्रेयी से कहा, 'प्रिये ! इस ब्रह्मचारिणी से कह दो कि मैं उसे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा नहीं दे सकूंगा।'

ब्रह्मचारिणी को जब ऋषि याज्ञवल्क्य का यह उत्तर दिया गया तो वह बहुत अधिक गम्भीर बन गई। उसके निष्पाप, सहजप्रसन्न और सुन्दर मुख पर क्लेश के भावों की छाया दिखाई देने लगी। लज्जा और संकोच को त्यागकर वह ऋषि के सम्मुख पहुंची, और बड़े शान्त तथा विनीत भाव से उसने कहा, 'विधाता ने मुझे नारी बनाया है, क्या इसी अपराध का मुझे यह दण्ड मिला है कि ऋषि याज्ञवल्क्य जैसे ब्रह्मवेत्ता ने भी मुझे अपनी शिष्या बनाना अस्वीकार कर दिया ?'

याज्ञवल्क्य ने यह सुना और वे सहम गए। सच तो कहती है बेचारी। अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर इस ज़रा-सी उम्र में सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में ख्याति प्राप्त कर लेने पर भी, केवल इसी अपराध से कि यह नारी है, मुझसे इस तरह तिरस्कृत हो रही है। याज्ञवल्क्य ने यह सोचा, और उनकी दृष्टि और भी अधिक अवनत हो गई। यह सुन्दरी कितनी उमंगों के साथ यहां आई होगी। मेरी इस निष्ठुर अस्वीकृति से

इसे कितना कष्ट पहुंचा होगा !···परन्तु अगले ही क्षण उन्हें ध्यान आया —मैं भी क्या करूं ! संसार देखेगा, और न जाने क्या-क्या कल्पनाएं करने लगेगा। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति की इच्छा से, उसके क्रियात्मक प्रयोगों के लिए इस सुन्दरी को न जाने कितनी ही बार दिन और रात के चौबीस घण्टे मेरी दृष्टि के सामने रहना पड़ेगा। दुनिया यह सब सुनेगी, तो कभी सहन न करेगी। दुनिया का भी क्या कसूर ! ऐसे नाजुक मामलों में तो सन्देह न करना ही एक बड़ी सिद्धि है। फिर मैं भी तो आखिर मनुष्य ही हूं। न जाने कब क्या न कर बैठूंगा···इसका ज़िम्मा मैं कैसे ले सकता हूं ! अनुकम्पावश ऐसी बात कर बैठने से क्या लाभ, जिसके परिणाम में दोनों पक्षों के लिए अशुभ होने की सम्भावना विद्यमान हो। याज्ञवल्क्य के मस्तिष्क में ये सब विचार बड़ी तेज़ी से घूम गए, और उन्होंने धीमे, परन्तु स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया, 'नहीं देवी, मैं तुम्हें शिक्षा नहीं दे सकूंगा।'

ब्रह्मचारिणी का मुंह पीला पड़ गया। वह वहां से उठी, और उसी समय कुटिया से बाहर हो गई।

पांच मास बीत गए। ब्रह्मचारिणी का कोई समाचार याज्ञवल्क्य के सुनने में नहीं आया। क्रमशः वह उसकी बात एक तरह से भूल ही गए।

गरमियों का मौसम था। सूरज पश्चिम में अस्त होने जा रहा था। हवा बन्द थी। इस वनप्रान्त का यह निर्जन भाग मानो सन्नाटा खींचे खड़ा था। ऋषि याज्ञवल्क्य अपनी कुटिया के बाहर धीरे-धीरे टहलते हुए न जाने किस समस्या पर विचार कर रहे थे। सहसा पास ही से, ज़मीन पर बिखरे हुए सूखे पत्तों पर, किसी व्यक्ति के चलने की पदध्वनि स्पष्ट रूप में सुनाई दी। याज्ञवल्क्य ने आंख उठाकर देखा; वे चौंक पड़े, 'यह क्या ! वह ब्रह्मचारिणी पुनः आ रही है !'

पास पहुंचकर ब्रह्मचारिणी गार्गी ने उन्हें नमस्कार तो किया, परन्तु

वहां ठहरे बिना ही वह उनकी कुटिया की तरफ बढ़ गई।

याज्ञवल्क्य चिन्ता में पड़ गए।

घर आकर उन्हें अपनी पत्नी से मालूम हुआ कि आर्यावर्त भर का अन्य कोई विद्वान इस योग्य नहीं सिद्ध हुआ कि वह इस प्रतिभाशालिनी ब्रह्मचारिणी के सन्देहों का समाधान कर सके, इसलिए सब ओर से निराश होकर वह पुनः उन्हींकी सेवा में आई है।

अपने पति का यह गौरव देखकर मैत्रेयी फूली न समाई। आज वह बड़ी उदार बनी हुई थी। बड़े प्यार और आदर के साथ मुस्कराकर मैत्रेयी ने अपने पति की तरफ देखा, और कहा, 'इस बेचारी को तुम पढ़ा क्यों नहीं देते ?'

याज्ञवल्क्य ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल मुस्कराहट की एक क्षीण रेखा ही उनके चेहरे पर दिखाई दी।

पत्नी के पुनः जोर देने पर उन्होंने कहा, 'सोचकर देखूंगा।'

रात्रि-भोजन के बाद याज्ञवल्क्य, सरसों के तेल के प्रकाश में, ताड़पत्र पर कोई चीज लिख रहे थे कि युवती गार्गी उनके समीप जाकर खड़ी हो गई। याज्ञवल्क्य चौंक उठे। तो भी अपने को संभालकर उन्होंने कहा, 'आइए! इस कुशासन पर बैठिए!'

आसन पर बैठकर सुन्दरी स्वयं ही कहने लगी, 'ऋषिवर, मैं इतनी धृष्ट हूं कि एक बार आपके यहां से तिरस्कृत होने पर भी पुनः आपकी सेवा में आई हूं। परन्तु करूं भी क्या ? कोई और उपाय भी तो नहीं सूझता। क्या आप अब भी मुझे अपनी शिष्या बनाने की कृपा नहीं करेंगे ?'

याज्ञवल्क्य ने कहा, 'आप मेरी कठिनाइयां समझ नहीं सकतीं; अन्यथा आप इस तरह आग्रह न करतीं। मुश्किल तो यह है कि मैं अपनी वे कठिनाइयां आपको बता भी नहीं सकता।'

सुन्दरी चिन्ता में पड़ गई। ऐसी भी क्या बात हो सकती है ? फिर भी उसने कहा, 'क्या उन कठिनाइयों को दूर या हल्का करना सम्भव ही नहीं है ?'

ऋषि के उज्ज्वल चेहरे पर हलकी-सी मुस्कराहट दौड़ गई। उन्होंने कहा, 'इस समय आप आराम कीजिए। कल प्रातःकाल मैं इस सम्बन्ध में आपसे बातचीत करूंगा।'

रात को सोने से पूर्व मैत्रेयी ने अपने पति से पूछा, 'तुमने उस बेचारी को क्या जवाब दिया ?'

याज्ञवल्क्य ने कहा, 'मैं स्वयं अभी तक किसी परिणाम पर नहीं पहुंच सका।'

मैत्रेयी ने बड़े लाड़ के साथ कहा, 'तुम्हें मेरी सौगन्ध; इस सरला ब्रह्मचारिणी को निराश न करना। मैं उसे अपनी बहन से बढ़कर मानती हूं।'

एक कदम आगे बढ़कर याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी के कन्धे का स्पर्श करते हुए कहा, 'प्रिये, इसका तो केवल एक ही उपाय है। पर उस उपाय को व्यवहार में लाने के लिए सबसे बड़ा स्वार्थत्याग तुम्हींको करना होगा।'

मैत्रेयी का दिल धक्-धक् करने लगा। सांझ ही से वह स्पष्ट देख रही थी कि इस ज़रा-सी बात को लेकर उसका ब्रह्मज्ञानी पति बहुत अधिक उद्विग्न हो रहा है। तो भी अपने को संभालकर उसने कहा, 'तुम्हें शायद लोक-निन्दा का भय है। परन्तु तुम्हारा यह तत्त्वज्ञान किस काम का, यदि तुम लोक-निन्दा-सी तुच्छ वस्तु की भी उपेक्षा नहीं कर सकते ?'

याज्ञवल्क्य मुस्करा दिए। उनकी इस मुस्कराहट में मैत्रेयी के अपने पर अविचल विश्वास के प्रति आदरपूर्ण आत्म-अविश्वास का हलका-सा आभास विद्यमान था। मैत्रेयी की आंखों में अपनी आंखें गड़ाकर याज्ञवल्क्य ने कहा, 'तो फिर मैं जो कुछ कर डालूं, उससे बुरा तो न मानोगी ?'

मैत्रेयी अपने पति के इस प्रश्न का अभिप्राय भी भली भांति न समझ सकी, तो भी अपने पति पर उसे जो अगाध विश्वास था; उसके आधार

पर उसने कहा, 'मेरी ओर से तुम बिलकुल निश्चिन्त रहो।'

प्रातःकाल जब गार्गी याज्ञवल्क्य का निर्णय सुनने की इच्छा से उनके पास गई, तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे अब गम्भीर नहीं दिखाई दे रहे थे। जैसे अब वे उसके अधिक निकट आ गए हों। गार्गी नमस्कार करके उनके समीप बैठ गई। ऋषि ने आज पहली बार उस अनिन्द्य सुन्दरी के मुख-कमल की तरफ ध्यान से देखा और कहा, 'तुम्हें अपनी शिष्या बनाने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होती; परन्तु जैसा मैंने कल रात कहा था, इसमें कुछ कठिनाइयां हैं।'

गार्गी ने धीरे से कहा, 'पर आपने यह भी तो कहा था कि उनके निराकरण के बारे में आप सोचेंगे।'

'हां, वही तो। मैंने उसके निराकरण का उपाय तो सोच लिया है; पर मालूम नहीं तुम उसे किस दृष्टि से देखोगी।'

गार्गी का चेहरा चमक उठा। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए वह सभी प्रकार का उत्सर्ग करने को तैयार थी। उसने कहा, 'क्या आप वह मुझे बताने की कृपा करेंगे?'

ब्रह्मचारिणी के मुंह पर अपनी दृष्टि जमाकर ऋषि ने कहा, 'इसका एक मात्र उपाय यही है कि तुम मुझसे विवाह कर लो!'

गार्गी स्तब्ध हो गई। यह उसने क्या सुना!

याज्ञवल्क्य ने उसी स्थिरता से कहा, 'तुम यह सुनकर अवश्य चौंकोगी। परन्तु मुझे तो और कोई उपाय नहीं सूझता। ब्रह्मविद्या के अभ्यास के लिए हमें कितनी ही बार आठों प्रहर एकसाथ बिताने पड़ेंगे। क्या लोकमत इसे सहन कर सकेगा? लोकमत की बात जाने दो। मैं अपने को ही लेता हूं। एक दुष्प्राप्य, पराई सुन्दरी कन्या को निरन्तर अपने एकान्त अनुशासन में पाकर भी मेरा हृदय कभी सीमा का उल्लंघन करेगा या नहीं—इस अग्नि-परीक्षा में से अपने को नहीं गुजारना चाहता। इससे तो यह कहीं अधिक अच्छा है कि हम दोनों विवाह कर लें, और उसके बाद परस्पर चाहे जो सम्बन्ध बनाए रखें। मेरे लिए भी यह एक नया

अभ्यास होगा। हमारे समाज में बहुविवाह लज्जा की बात नहीं है ; पर विवाह किए बिना किसी पुरुष और स्त्री का निरन्तर एकसाथ और एकान्त में रहना लोक-निन्दा का सबसे अधिक आकर्षक और मनोरंजक विषय बन जाता है।···आशा है, तुम मेरा अभिप्राय समझ गई होगी।'

गार्गी के सामने जैसे सभी कुछ स्पष्ट हो गया था। वह भी प्रसन्न होकर मुस्करा दी, मानो वह कह रही थी, 'तो चलो, विवाह ही सही !'

उसी दिन आर्या मैत्रेयी के हस्ताक्षरों से दण्डकारण्यनिवासी सभी ऋषियों के पास याज्ञवल्क्य के इस द्वितीय विवाह के निमन्त्रणपत्र भेज दिए गए।

चोट

इन्दु को लाहौर आए अधिक समय नहीं हुआ। अभी सिर्फ चार मास ही से वह स्थानीय क्रिश्चियन कालेज के तृतीय वर्ष में प्रविष्ट हुआ है। अपने स्कूल का जीवन उसने अपनी जन्मभूमि कश्मीर के अनन्तनाग नामक स्थान पर गुज़ारा था और कालेज के प्रथम दो वर्ष जम्मू के स्टेट कालेज में। लाहौर के सम्बन्ध में वह शुरू ही से बहुत कुछ सुनता आ रहा था, मगर यहां आकर उसने जो कुछ देखा, उससे जैसे उसकी आंखें खुल गईं। अपने कालेज का होस्टल उसे यूरोप के किसी होस्टल से कम नहीं जान पड़ा। साज-सिंगार, वेश-भूषा और चमक-दमक—इन सब दृष्टियों से उसे लाहौर सचमुच हिन्दुस्तान का पेरिस जान पड़ा।

लाहौर आकर जिस चीज़ ने उसका ध्यान सबसे अधिक अपनी तरफ आकृष्ट किया, वह था यहां का महिला-समाज। वह स्वयं एक कश्मीरी पण्डित का पुत्र था। कश्मीर की महिलाओं में सौन्दर्य का अभाव नहीं है, इसलिए पंजाब की स्वस्थ, सुगठित और गौरवर्ण युवतियों का रूप तो उसके लिए कोई विशेष आकर्षक वस्तु नहीं था, परन्तु इन सुन्दरी नव-युवतियों की वेश-भूषा अवश्य ही उसके लिए एक विस्मय की वस्तु थी। साड़ी आखिर एक धोती ही तो है न? इन साड़ियों में भी इतने डिज़ाइन हो सकते हैं, आध गज़ के ब्लाउज़ में इतना आकर्षण उत्पन्न किया जा सकता है, चेहरे की सज्जा और सिर की मांग-पट्टी में भी इतने फैशन हो सकते हैं—ये चीज़ें उसने पहले-पहल लाहौर आकर ही देखीं। सबसे बढ़कर विस्मयजनक प्रतीत हुआ उसे लाहौर की शिक्षिता लड़कियों का

खुलापन। कोई लड़की साइकिल पर सवार होकर खुले-आम घूमे—यह चीज़ उसके लिए अद्‌भुत थी; और लाहौर की सड़कों पर यह बात बिलकुल मामूली थी। स्वयं उसकी अपनी जमात में ही पचीस-तीस लड़कियां लड़कों के साथ बैठकर पढ़ती थीं। वे सभा-सोसाइटियों में शामिल होतीं, वाद-विवाद में हिस्सा लेतीं, और जमात के हंसी-मजाकों में भी शरीक होती थीं।

इन्दु था तो लड़का; मगर था लड़कियों से भी अधिक शर्मीला। किसी लड़की की तरफ वह आंख उठाकर भी न देख सकता था। उसे यदि कभी इस बात का आभास भी मिलता कि कोई लड़की उसकी तरफ देख रही है, तो शर्म के मारे उसकी आंखें नीचे की तरफ झुक जातीं। लड़कियों की मौजूदगी में न वह ऊंचा बोल सकता और न स्वच्छन्द होकर कोई हरकत ही कर सकता।

क्लास के और-और लड़के नित नई दोस्तियां पैदा करते, अपनी हमजमातियों से बातचीत करते, उनके समीप रहने के अवसर खोजते; मगर इन्दु को कालेज में प्रविष्ट हुए चार मास बीत गए, फिर भी उसे किसी लड़की का नाम तक न मालूम हो सका।

जुलाई मास का दूसरा रविवार था। आज स्थानीय क्रिश्चयन कालेज के विद्यार्थियों की एक टोली पिकनिक के उद्देश्य से रावी नदी के तट पर गई थी। इस टोली में लड़के और लड़कियां दोनों ही शामिल थे। कुछ प्रोफेसर भी साथ में थे। दुपहर का भोजन भी रावी के तट पर ही तैयार किया गया। आसमान में हल्के-हल्के बादल छाए हुए थे, सुबह कुछ बूंदा-बांदी भी हो चुकी थी, फिर भी गरमी बेहद थी। शीशम के इस हरे-भरे और घने जंगल में भी शीतलता का आभास तक न था। तथापि नवयुवक विद्यार्थियों के इस सम्मिलित आनन्दोत्साह ने इस जंगल में मंगल बना रखा था। भोजन के बाद संगीत शुरू हुआ। उसके बाद बर्फ में दबाकर ठण्डे किए हुए फल खाए गए और अन्त में चुटकले सुनाने

की बारी आई।

दुपहर ढल चुकी थी। सहसा ठण्डी हवा का एक जबर्दस्त झोंका आया। सारी मजलिस खुशी से मस्त होकर चिल्ला उठी। उन्होंने देखा, पश्चिम दिशा से काले-काले बादलों का एक समूह, बड़ी शीघ्रता से आकाशमण्डल पर कब्ज़ा करता चला आ रहा है। यह स्पष्ट था कि शीघ्र ही जमकर पानी बरसेगा। पंजाब के मैदानों में जुलाई मास की वर्षा से भीग जाने की संभावना वैसे भी किसीको डरा नहीं सकती, फिर यह तो नवयुवक विद्यार्थियों का समूह था, जिन्हें अचानक पैदा होनेवाली भिन्न परिस्थितियों में नवीनता और आनंद का अनुभव होता है। झट से प्रस्ताव हुआ, 'इसी समय साइकलों पर सवार होकर शालामार बाग चला जाए।'

शालामार वहां से पांच मील से कम न होगा, परन्तु प्रस्ताव बहुत बड़े बहुमत से स्वीकृत हो गया। भारी कोलाहल में प्रायः सभी विद्यार्थियों ने एकसाथ इस प्रस्ताव का समर्थन किया। इसी समय एक प्रोफेसर ने गंभीरता से कहा, 'तुम लोग शालामार भले ही जा सकते हो ; मगर इन लड़कियों को वहां ले जाने का क्या प्रबंध होगा ?'

किसी लड़के ने दबी जबान से कहा, 'तो फिर आप किस बात के लिए हैं ?'

इसपर 'हुश्' की आवाज़ एकसाथ कई स्थानों से सुनाई दी। इन विद्यार्थियों में भलेमानसों की संख्या अधिक थी। इस समस्या पर विचार शुरू हुआ, और शीघ्र ही यह तय पाया कि इन छात्राओं के लिए तांगे मंगाकर पहले इन्हें शहर की ओर रवाना कर दिया जाए, और तब शालामार की तरफ कूच शुरू हो। इधर बिजली की चमक और बादल की गरज प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी।

यहां इस समस्या पर विचार हो ही रहा था कि इन्दु ने अपनी साइकल उठाई और जंगल में से ही, एक पगडण्डी की राह, वह शहर के लिए रवाना हो गया।

इन्दु अभी आध मील राह भी नहीं तय कर पाया होगा कि मूसला-धार वर्षा शुरू हो गई। इधर वर्षा शुरू हुई और उधर तेज़ हवा का दौर भी जारी हुआ। इस हवा और पानी ने मिलकर तूफान बरपा कर दिया। दो-तीन मिनटों में ही सब तरफ पानी ही पानी दिखाई देने लगा। यहां तक कि राह दीखना भी बन्द हो गया। लाचार होकर इन्दु अपनी साइकल से उतर पड़ा और एक तरफ एक बड़े-से पेड़ के झुके हुए तने की छाया में खड़े होकर वर्षा बन्द हो जाने का इन्तज़ार करने लगा।

वर्षा अभी तक उतने ही ज़ोरों पर थी। बड़ी-बड़ी असंख्य बूंदों के भार से दबकर मानो बादल ज़मीन पर उतर आया था और तेज़ हवा के झोंकों की मार से वह इधर-उधर लुढ़कता फिर रहा था। वृक्षों की टह-नियां सांय-सांय करके शोर मचा रही थीं। हवा के ज़ोर से वृक्ष अपने तनोंसहित इधर-उधर झूमते थे, जैसे प्रलय की सम्भावना से डरकर वे एक दूसरे से चिपट जाना चाहते हों। पृथ्वी पर अन्धकार-सा छा गया था। इन्दु की नज़र जहां तक जाती थी, वहां तक उसे वृक्षों के तने, बादल, कोहरा और पानी की बौछार ही दिखाई देती थी। रह-रहकर बिजली चमकती और उसके बाद बादल गरज उठता। बादल की इस गरज में वर्षा की टप-टप, टहनियों की सांय-सांय सभी कुछ क्षण भर के लिए मानो लीन हो जाता था और बादल की गरज थमते ही वह सब फिर से सुनाई देने लगता था।

इन्दु चुपचाप खड़े होकर प्रकृति के तत्त्वों का यह खेल देख ही रहा था कि उसके समीप से ही एक और साइकल गुज़री। इन्दु के विस्मय का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि इस साइकल पर एक लड़की सवार है। साइकल की चाल बहुत धीमी थी। यह साफ होता था कि वह युवती बड़े भय और आशंका के साथ, और कोई चारा न सूझने के कारण, आगे बढ़ती चली जा रही है। इन्दु ने यह देखा और देखकर भी दो-एक मिनट तक यह निश्चय न कर सका कि इस दशा में उसका क्या कर्तव्य है। परन्तु शीघ्र ही इन्दु ने भी अपनी साइकल संभाली और वह उसी तरफ

को चल दिया। कुछ ही दूर चलने के बाद उसे बिलकुल अस्पष्ट रूप से दिखाई दिया कि वह युवती अपनी साइकल समेत पानी में गिर पड़ी है। इसके साथ ही साथ उसे उसके चीखने की आवाज भी सुनाई दी। इन्दु ने अपनी साइकल सरपट दौड़ाई, और एक मिनट के अन्दर ही वह घटना-स्थल पर जा पहुंचा।

वह लड़की इस समय तक उठकर खड़ी तो हो गई थी, मगर उसकी साड़ी का एक भाग साइकल की जंजीर में जा फंसा था, और वह उसे अब तक छुटा न पाई थी। वह अत्यधिक घबराई हुई थी, परन्तु अब अपने कालेज के एक विद्यार्थी को अपने निकट पहुंचा देखकर उसका भय जाता रहा और उसने जबरदस्ती मुस्कराने की चेष्टा की।

नजदीक आकर इन्दु ने शीघ्रता से युवती की धोती साइकिल की पकड़ से छुड़ा दी। लज्जा और उत्साह के मारे उसके हाथ तो कांप रहे थे, मगर इस दशा में उसकी कार्यशक्ति और एकाग्रता बहुत बढ़ गई थी। इसके बाद युवती की साइकल को खड़ा करते हुए उसने पूछा, 'आपको चोट तो नहीं आई ?'

युवती ने जवाब दिया, 'हार्दिक धन्यवाद ! मुझे चोट तो नहीं आई, मगर इस एकान्त में यह मुसीबत आ जाने पर मैं बहुत अधिक डर गई थी। मेरा सौभाग्य है कि आप आ पहुंचे।'

इन्दु ने जैसे बड़े संकोच के साथ कैफियत दी, 'मुझे काम था, इसलिए मैं तो पहले ही इस राह से चल दिया था। मगर अचानक इतनी तेज वर्षा शुरू हो जाने पर बीच ही में रुक जाना पड़ा।'

सहसा उसने अनुभव किया कि जैसे उसे कैफियत देने की जरूरत नहीं है। युवती उसपर किसी तरह का सन्देह नहीं करती। अपनी साइकल संभालकर उसने कहा, 'वहां वे सब लोग शालासार जाने के मन्सूबे बांध रहे थे और हम लोगों के लिए तांगों का प्रबन्ध करने की बात सोची जा रही थी। मगर मेरे जी में आया कि वर्षा शुरू होने से पहले ही घर जा पहुंचूं। मुझे इसकी सम्भावना नहीं थी कि इतनी जल्दी मूसलाधार पानी

बरसने लगेगा। देखिए न, यह वर्षा है या तूफान !'

इतना कहकर वह मुस्कराई। उसके श्वेत पड़ गए, भयभीत और पीले चेहरे पर प्रसन्नता के कुछ चिह्न दिखाई दिए। इन्दु को भी कुछ साहस हुआ। उसने कहा, 'आपको साइकल चलाने का बड़ा अच्छा अभ्यास है। मैं तो इस तूफान में आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं कर सका था।'

युवती ने बड़ी कोमलता से हंसकर कहा, 'जी हां, मेरे इस अभ्यास का प्रमाण मेरे इन कीचड़-सने कपड़ों से खूब अच्छी तरह मिल रहा है।'

सहसा इन्दु को ध्यान आया कि इस तेज वर्षा में युवती को कुछ ठण्ड मालूम हो रही होगी। उसने झट से अपना कोट उतारा और उसकी तरफ बढ़ाते हुए कहा, 'आपको सर्दी मालूम हो रही होगी। बरसाती तो है नहीं। इस कोट को ही सिर पर डाल लीजिए। कम से कम थोड़ा-सा बचाव तो हो ही जाएगा।'

लड़की के सब वस्त्र तो गीले हो ही गए थे, अब उनपर एक और गीला कोट उठाना बेकार था। फिर भी इन्दु का जी न दुखाने की गरज़ से उसने वह कोट हाथ में लेते हुए कहा, 'धन्यवाद !'

युवती ने कोट हाथ में तो ले लिया, परन्तु उसे अपने सिर पर नहीं डाला। इन्दु की भी यह हिम्मत न हुई कि वह इस बात के लिए दुबारा आग्रह कर सके।

अब युवती ने कहा, 'चलिए, अब शहर की तरफ चला जाए। आपको रास्ता तो मालूम ही होगा।'

इन्दु ने कहा, 'चलिए, मुझे रास्ता खूब अच्छी तरह मालूम है।'

वर्षा अब भी उतने ही वेग से हो रही थी, परन्तु वायु का प्रवाह अब शान्त हो चुका था। दोनों व्यक्ति थोड़ी ही देर में जंगल से बाहर आ पहुंचे। युवती को वहीं खड़ा कर इन्दु एक तांगा ले आया, और उसे उसपर सवार करा दिया। साइकल तांगे के अगले भाग में रख दी गई।

तांगे पर बैठने से पूर्व युवती ने पूछा, 'क्या मैं आपका नाम जान सकती हूं ?'

'इन्दुभूषण।'

वह इतना भी न कर सका कि बदले में युवती से उसका नाम तो पूछ ले। तांगा चल दिया।

इन्दु जब सड़क पर अकेला रह गया, तो एकाएक उसे एक अभाव, एक विशेष प्रकार का सूनापन-सा अनुभव होने लगा।

रविवार की इस घटना के बाद कालेज में वह युवती इन्दु को बहुत कम दिखाई दी। इन्दु को ज्ञात हो गया कि उस लड़की का नाम प्रभा है, और वह लुधियाना के एक सम्पन्न डाक्टर की बड़ी कन्या है। वह इसी कालेज के द्वितीय वर्ष में पढ़ रही है।

उक्त घटना के आठ-दस दिन के बाद लाहौर के सभी कालेजों में ग्रीष्मावकाश शुरू हो गए। सब लड़के अपने-अपने घरों को चले गए। इन्दु भी अनन्तनाग के लिए रवाना हो गया।

इन्दु केवल पांच महीनों के बाद ही अपने घर वापस आया था, परन्तु इस ज़रा-से अन्तर में ही मानो उसका यह देहाती कस्बा 'अपना' नहीं रहा है—पराया हो गया है। लाहौर के जीवन से वह इतना अधिक प्रभावित हो गया था।

इन्दु के मां-बाप हैं, दो छोटे भाई हैं और एक बहिन भी है, उससे दो साल बड़ी। बड़ी बहिन का ब्याह हुए सात साल हो चुके हैं। उसका घर अनन्तनाग में ही है। उसका रहन-सहन कश्मीरी पण्डितानियों का सा है। हिन्दी पढ़-लिख लेने के मामूली ज्ञान तक ही उसका अक्षराभ्यास सीमित है। इन्दु के पिता बहुत धनी तो नहीं, परन्तु किसी तरह का अभाव उन्हें नहीं है।

दिन भर तो इन्दु घर की बैठक में किताबें पढ़ता रहता, और शाम के समय, पहलगांव की ओर जानेवाली सड़क की तरफ, सैर के उद्देश्य से निकल जाता। यही उसकी दिनचर्या थी।

एक दिन की बात है, इन्दु सांझ की सैर से वापस लौट रहा था कि

शहर के पेट्रोल पम्प के निकट एक मोटरकार उसे पेट्रोल लेते हुए मिली। इस मोटर की तरफ एक उड़ती निगाह डालकर वह आगे बढ़ा ही था कि अचानक बड़े मधुर और कोमल स्वर में उसे आवाज़ आई, 'भाई साहब ! नमस्ते।'

इन्दु चौंक पड़ा। उसके विस्मय और हर्ष का कोई ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि प्रभा अपने मां-बाप और छोटे भाई-बहनों के साथ वहां मौजूद है। उत्तेजना से उसका मुंह लाल हो गया, और हृदय धक्-धक् करते हुए किसी अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करने लगा। बड़ी नम्रता से नमस्कार का जवाब देकर इन्दु ने कहा, 'ओह, आप यहां कहां ?'

इसी समय प्रभा ने अपने पिता को इन्दु का परिचय दिया, 'ये हमारे ही कालेज में मेरी ही श्रेणी में पढ़ते हैं। बड़े ही सज्जन हैं।'

प्रभा के पिता ने एक गहरी निगाह से इस ब्राह्मण युवक की तरफ देखा, और पूछा, 'आप भी यहां सैर के लिए आए हैं ?'

इस प्रश्न का जवाब कुमारी प्रभा ने दिया, 'जी नहीं, इनका घर ही यहीं, अनन्तनाग में, है। मैं आज रास्ते भर यही सोचती आ रही थी कि अनन्तनाग में यदि इनसे भेंट हो जाए तो कितना अच्छा हो।'

इन्दु को इस बात का अत्यधिक प्रसन्नतापूर्ण विस्मय हुआ कि प्रभा उसके सम्बन्ध में यह सब कहां से जान गई। इस समय तक मोटर में पेट्रोल डाला जा चुका था, और ड्राइवर इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि कब चलने का हुक्म होता है। यह देखकर प्रभा के पिता ने क्षमा-याचना-सी करते हुए कहा, 'हम लोग पहले ही बहुत लेट हो गए हैं।··· आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।'

इन्दु ने बड़ी नम्रता से अनुरोध किया, 'आज रात के लिए आप लोग यहीं ठहर जाइए।'

यह असम्भव था। प्रभा भी जानती थी कि यह नहीं हो सकता, इसलिए इन्दु का दिल रखने की इच्छा से उसने कहा, 'आप यहां रहकर

कोई किताब तो लिख नहीं रहे होंगे ! क्यों न कुछ दिनों के लिए, अपने भाइयों के साथ, आप भी पहलगांव चले आएं ?'

यद्यपि अभी तक उसने पहलगांव जाने का विचार भी नहीं किया था, तथापि उसने कहा, 'वहां जाने की सोच तो कई दिनों से रहा था, मगर अभी तक कल-कल ही करता रहा। अच्छा, अब देखिए······'

नमस्कार के बाद मोटर चल दी। राह में प्रभा के छोटे भाई ने उससे पूछा, 'बहिनजी, ये कौन थे ?'

उसने कहा, 'मेरे भाई थे !'

इन्दु जब वहां से चला, तो जैसे किसीने उसमें नवजीवन का संचार कर दिया हो। उसके पांव जमीन पर पड़ते ही न थे।

तीसरे दिन की प्रातःकाल इन्दु अपने दोनों भाइयों सहित पहलगांव जा पहुंचा। पहलगांव के एक अच्छे होटल का मालिक इन्दु के पिता का घनिष्ठ मित्र था। इन्दु उसीके यहां जाकर ठहरा। दिन भर बीत गया; मगर अपनी शर्मीली तबीयत के कारण, जबरदस्त उत्सुकता रहते हुए भी, उस पांच-छः हज़ार की आबादी में इन्दु यह पता न लगा सका कि प्रभा के पिता कहां ठहरे हैं। उनका टैण्ट आबादी से कुछ ऊपर सरिता के बिलकुल निकट था। अगले दिन की सुबह जब इन्दु सैर के लिए जा रहा था, तो राह में प्रभा के पिता से उसका साक्षात् हो गया। वे अपने परिवारसमेत सैर से वापस आ रहे थे, परन्तु प्रभा उनके साथ नहीं थी। इन्दु का बस चलता, तो वह उनके निकट से भी कतराकर निकल जाता, परन्तु प्रभा के पिता की निगाह उसपर पड़ ही गई। उन्होंने कहा, 'अच्छा, तुम भी यहां आ गए ? कहां ठहरे हो ?'

इन्दु ने नमस्कार करके जवाब दिया, 'जी हां, कल ही यहां आया हूं।······होटल में ठहरा हूं।'

चाहते हुए भी इन्दु यह न पूछ सका कि प्रभा कहां है। वह तो यह पूछने की भी हिम्मत न कर सका कि आप लोगों का टैंट किस जगह है। परन्तु प्रभा के पिता ने स्वयं ही अपना पता बताकर कहा, 'आज तुम

तीनों चाय वहीं आकर पीना ।'

इन्दु इनकार न कर सका । चाय के लिए समय बताकर प्रभा के पिता आगे चल दिए ।

तीन-चार दिनों में ही प्रभा के परिवार से इन्दु का खूब हेलमेल हो गया । प्रभा के भाई-बहन सब उसे 'भाईजी' कहकर बुलाने लगे । इन्दु ने देखा कि पहलगांव में सूखी लकड़ी की अच्छी सुविधा न होने के कारण आग जलाने में बड़ा झंझट रहता है, और उनका रसोइया भरसक प्रयत्न करके भी समय पर भोजन तैयार नहीं कर पाता, इसलिए होटल के मालिक से कह-सुनकर उसने प्रभा-परिवार के लिए अपेक्षाकृत सस्ते दामों पर भोजन का अच्छा प्रबन्ध कर दिया । इन्दु के आग्रह पर प्रभा के पिता भी इस परिवर्तन के लिए तैयार हो गए ।

प्रभा के पिता खूब शिक्षित और उदार विचारों के व्यक्ति थे । वे आदमी पहचानते थे । इन्दु के हृदय की पवित्रता को वे शीघ्र ही पहचान गए, और अपने परिवार में उसके हिलमिल जाने में उन्होंने कोई बाधा नहीं डाली । परिणाम यह हुआ कि बहुत शीघ्र इन्दु जैसे इस परिवार का अंग बन गया । ये सब लोग एकसाथ खाते-पीते, एकसाथ खेलते और एक साथ सैर पर जाते ।

इक्कीस अगस्त को रक्षाबन्धन का त्यौहार था । वह त्यौहार, जिससे अधिक पवित्र और अधिक मधुर किसी अन्य त्यौहार की कल्पना मनुष्य का दिमाग आज तक नहीं कर पाया । बहिनें अपने भाइयों को राखियां भेजती हैं, किन उमंगों के साथ, किन उच्च भावनाओं के साथ, कितने उज्ज्वल और मीठे स्नेह के साथ ! जैसे उनके भाई मनुष्य नहीं, देवता हैं । आज रक्षाबन्धन का दिन था । इन्दु को प्रभा का आदेश था कि आज प्रातःकाल अन्धकार में ही वह उठे, और नहा-धोकर, वह उसके टैंट में पहुंच जाए । यथासमय अपने हाथ से काते हुए लाल सूत की कुछ कच्ची लड़ियां लेकर पहले उसने अपने छोटे भाइयों की कलाई में बांधी,

और उसके बाद इन्दु की बारी आई। इन्दु को रक्षाबन्धन के अभेद्य कवच में बांधकर प्रभा ने उसके माथे पर केसर का तिलक लगाया। इसके बाद खान-पान हुआ, संगीत हुआ और तब यह परिवार सैर के लिए बाहर निकल गया।

इन्दु को अपने जीवन में आज एक ऐसी पूर्णता अनुभव हो रही थी, जो उसके लिए अननुभूतपूर्व थी। उसका हृदय आज तृप्त हो गया था; उस तरह से, जैसे प्यासे को ठण्डा पानी मिल गया हो, भूखे को षट्रस भोजन प्राप्त हो गया हो—कौन कहता है कि यह दुनिया दुःखों से भरी है, अपूर्ण है। यहां तो सुख ही सुख है, पूर्णता है, तृप्ति है, सन्तोष है। जब तक हृदय का असीम स्नेह लेकर नारी-जाति पुरुषों के व्यथित हृदय को आश्वासन, स्नेह और प्रोत्साहन देने के लिए मौजूद रहेगी, तब तक स्वर्ग यहीं रहेगा—इसी पृथ्वी पर रहेगा।

रक्षाबन्धन के त्यौहार के बाद प्रभा के पिता सिर्फ दो ही सप्ताह पहलगांव में और ठहरे; परन्तु इन दो सप्ताहों में ही इन्दु प्रभा को इतनी अच्छी तरह से पहचान गया, जैसे वह जन्म भर से उसीके साथ रहा हो। प्रभा के पिता कामकाजी आदमी थे, इसलिए एक मास कश्मीर रहकर वे लोग लुधियाना लौट गए। उनके जाने के बाद इन्दु को पहलगांव में एक दिन काटना भी दूभर हो गया और वह भी अनन्तनाग को लौट गया।

बहुत-से पुरुषों का हृदय स्नेह का, कोमलता का, आदर का और परवरिश का भूखा होता है। यह स्नेह, यह कोमलता, यह आदर और यह परवरिश देने की सामर्थ्य नारी-जाति को परमेश्वर की ओर से विरासत में मिली है, इसीलिए ऐसे पुरुषों का काम स्त्रियों के बिना चल ही नहीं सकता। यह तो अपनी-अपनी तबियत का सवाल है। तुम उन्हें ये चीजें मत दो। मुमकिन है कि वे शिकायतें न करें; मगर इसका नतीजा यह होगा कि उनके दिल कुम्हला जाएंगे, उनका दिमाग मन्द पड़ जाएगा, और उनकी चित्तवृत्तियां मार्गभ्रष्ट होकर विकार उत्पन्न करने

लगेंगी। इन्दु भी इसी तबीयत का नवयुवक था। अगर उसके चित्त के अनुकूल उसकी कोई सगी बहन होती, तो शायद प्रभा के लिए उसका हृदय उतना उत्सुक न होता। उसके जीवन में एक अभाव था, दिल में एक खालीपन था। प्रभा ने अपने कोमल, शिक्षित और सधे हुए स्नेह से उस अभाव को भर दिया था।

यहां प्रकाश न था। उधर, कोठी के सहन में, जब संस्कार शुरू हो गया, तो इन्दु वहां बैठा न रह सका; उठकर एकान्त की इच्छा से इधर चला आया। आज प्रभा का विवाह हो रहा है। एफ० ए० का इम्तहान देकर वह घर चली आई थी। उसका इरादा अभी बी० ए० पास करने का था; मगर उधर उसके मां-बाप एक पूरा षड्यन्त्र रचे बैठे थे। उन्होंने प्रभा के लिए एक अच्छा वर तलाश कर रखा था, और उनका ख्याल था कि ऐसे मौके रोज नहीं आते। लड़का विलायत से इंजीनियर बनकर आया था, और अम्बाला की एक मिल में अच्छी तनख्वाह पर काम करता था। लड़के की मंजूरी ली जा चुकी थी। सिर्फ प्रभा को राजी करना ही बाकी था। आखिर घेर-घारकर उसे भी तैयार कर लिया गया, और ब्याह की तिथि मई मास के चौथे सप्ताह में नियत कर दी गई। इन्दु को भी न्यौता दिया गया था और कालिज से छुट्टी लेकर ब्याह से चार-पांच दिन पहले ही वह लुधियाना आ पहुंचा था।

इन पांचों दिनों में वह असाधारण तौर से प्रसन्न दिखाई देता रहा। सब लोग उससे घर के सदस्य की तरह ही व्यवहार करते थे। विवाह के प्रत्येक काम में वह खूब दिलचस्पी ले रहा था, मगर उसके दिल की क्या दशा थी, इसे वह स्वयं भी नहीं जानता था, और न जानना ही चाहता था। इसी तरह से दिन निकलते जाएं, और क्या चाहिए।

परन्तु आज जब वर महाशय धूमधाम के साथ अपनी बरात सहित आंगन की कोठी में आ पहुंचे, और रात की उस निस्तब्ध वेला में उन्हें अग्नि के निकट बैठाकर विवाह-संस्कार की विधि प्रारम्भ कर दी गई,

तो इन्दु शान्त भाव से बैठा न रह सका। उठकर कोठी के पिछवाड़े चला गया।

पुरोहितों के मन्त्रोच्चार की अस्पष्ट आवाज़ अब भी उसके कानों में आ रही थी, जैसे वह दूर पर गिरते हुए किसी झरने की यकसां आवाज़ सुन रहा हो। कुछ ही दूरी पर मेहमानों के भोजन का प्रबन्ध था। वहां अनेक लोग खाने की मेज़ों को सजाने में व्यस्त थे। घर के अन्दर से स्त्रियों के मंगलगान की आवाज़ आ रही थी। रह-रहकर द्वार का बैंड भी बज उठता था। दूर पर, बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में, बच्चे खेल रहे थे। कोई रोता था, कोई चिल्लाता था; मगर इन्दु का ध्यान इन सबकी ओर नहीं था। वह सोच रहा था—आज मेरी बहिन का विवाह है। ठीक तो है, यह कितनी प्रसन्नता की बात है! मगर मुझे प्रसन्नता क्यों नहीं अनुभव होती? सचमुच मुझे खुशी नहीं है! क्यों? बात क्या है? प्रभा पराई हो जाएगी—इसलिए? नहीं, वह पराई कैसे हो जाएगी? जैसे वह अब मेरी बहिन है, तब भी मेरी बहिन ही रहेगी। इसमें कोई अन्तर नहीं आएगा।···मगर उसका जी नहीं माना। वह पुनः सोचने लगा—अन्तर कैसे नहीं आएगा? मैं उसका होता ही कौन हूं? दुनिया में वाकफियत तो सैकड़ों लोगों से होती है; मगर इस तरह कोई किसीसे बंधकर थोड़े ही बैठ जाता है। दुनिया की निगाह में बंधकर बैठना तब होता है, जब कोई रिश्ता हो। मेरा-उसका कोई खून का रिश्ता तो है नहीं, सिर्फ वाकफियत है। यह वाकफियत चाहे कितनी गहरी क्यों न हो, नये लोगों के लिए इसकी कद्र ही क्या? आज जो यह हट्टा-कट्टा इंजीनियर अग्नि के सामने बैठकर मेरी बहिन प्रभा पर सदा के लिए एकाधिकार जमा लेने की शपथ ले रहा है, वह मुझे अपनी निगाह से कैसे देखेगा? हर्गिज़ नहीं देखेगा!

इन्दु का ध्यान अब वर महाशय की तरफ खिंच गया—वैसे आदमी तो बुरा नहीं मालूम होता, मगर तबीयत का कुछ कटोर और सौ-फीसदी कर्मनिष्ठ व्यक्ति प्रतीत होता है; जैसे कठोर पुरुषत्व की मूर्ति हो। मेरी

प्रभा का जी इससे मिल सकेगा ? कुछ समझ में नहीं आता। प्रभा के दिल की सूक्ष्म और सुन्दर भावनाओं को, दिन-रात लोहे की प्राणहीन मशीनों पर नियन्त्रण रखनेवाला यह हृष्ट-पुष्ट इंजीनियर ठीक-ठीक समझ सकेगा या नहीं, उनका आदर कर सकेगा या नहीं—कुछ कहा नहीं जा सकता।

उसका हृदय जैसे क्षण भर के लिए बिलकुल खाली-सा हो गया; मगर इसके बाद सहसा उसके जी में आया—यही क्या मालूम कि प्रभा ही सदैव मुझे इसी तरह अपना भाई समझती रहेगी। घटनाओं के प्रभाव से वह अनायास ही मेरे बिलकुल निकट आ गई थी। घटनाएं ही उसे मुझसे दूर खींच ले जा सकती हैं। प्रभा अब नई दुनिया में जाएगी, नये लोगों से परिचय प्राप्त करेगी। मैं इसका होता ही कौन हूं ?····हे प्रभो ! यह सब क्या हो रहा है !

इन्दु के मुंह से हठात एक गहरा और ठण्डा श्वास निकला। इस तरह एकान्त में बैठे-बैठे उसने न जाने कितना समय बिता दिया। अचानक अपने नाम की पुकार सुनकर वह उठ खड़ा हुआ। बरात को भोजन कराने का काम उसीके सुपुर्द था, और अब उसका समय हो आया था।

तीन महीने बीत गए।

इस साल रक्षाबन्धन चौदह अगस्त को पड़ता था। आज, रक्षाबन्धन से ठीक एक दिन पहले, बिस्तरे से उठते ही, प्रभा को सबसे पहले इन्दु की याद आई। कालेज में छुट्टियां हो जाने पर परीक्षा की तैयारी के उद्देश्य से, वह अभी तक लाहौर में ही था। घर के छोटे-छोटे कामों से निपटकर प्रभा रक्षाबन्धन की डाक तैयार करने में लग गई। अम्बाला में पिछले दिनों बहुत गरमी पड़ती रही थी, मगर कल रात को खूब पानी बरस गया था। इस वक्त बादल के सफेद टुकड़े आसमान में बहुत ऊंचाई पर छितराए हुए थे। प्रभा ने ऊपर की मंजिल पर, अपने कमरे

के पास खुली छत पर, कुरसी डलवाई और चिट्ठियां लिखने लगी। सबसे पहले उसने अपने दोनों भाइयों के नाम अलग-अलग दो संक्षिप्त से पत्र लिखे। इसके बाद इन्दु की बारी आई। आज उसका हृदय न जाने क्यों विशेष प्रसन्न था। चिट्ठी लिखने बैठी, तो मानो जी खोलकर रख दिया; मानो पूरी बेतकल्लुफी हो, बिलकुल अपनापन हो। इस पत्र में और बातों के साथ वह नितान्त अबोध भाव से अपने पर भी कुछ छींटे उड़ाती गई।

चिट्ठियां लिखकर उसने कच्चे सूत से स्वयं तीन रक्षाबन्धन तैयार किए, उन्हें केसर के जल में भिगोकर सूखने डाल दिया। इन सब कार्यों में ग्यारह बज गए। प्रतिदिन वह घर के काम-काज से निबटकर दस बजे स्नान कर लिया करती थी, क्योंकि सदा ग्यारह बजे उसके पतिदेव भोजन के लिए घर आया करते थे; और तब वे दोनों एकसाथ बैठकर भोजन किया करते थे। कलाई की घड़ी में ग्यारह बजे देखकर प्रभा हड़बड़ाहट में उठ खड़ी हुई, और शीघ्रता से स्नानागार की ओर चली गई।

प्रतिदिन की तरह जब उसके पति भोजन के लिए घर आए, तो प्रभा उन्हें दिखाई न दी। वे उसकी तलाश में ऊपर पहुंचे। वहां प्रभा तो उन्हें नहीं मिली, मगर उसकी छोटी मेंज पर पड़ी खुली चिट्ठियों पर उनकी निगाह अनायास ही जा पहुंची। वे उस तिपाई के समीप पहुंचे, और कौतूहलवश, यों ही, उन चिट्ठियों को पढ़ने लगे। दो चिट्ठियां उनके छोटे सालों के नाम थीं, काफी संक्षिप्त, मगर जीवन और मनोरंजकता से भरी हुई। यह तीसरी, लम्बी-सी चिट्ठी, किसके नाम पर है? पैड के पूरे तीन सफे दोनों तरफ से भरे हुए हैं। कौतूहल का स्थान उत्सुकता ने लिया, और उन्होंने चिट्ठी उठा ली।

प्रभा के पति का नाम था देवदत्त। वह स्वभाव से भावना-प्रधान नहीं था। यों वह नीरस प्रकृति का मनुष्य नहीं था, खेल-कूद, संगीत, हंसी-मज़ाक—सभी में उसे काफी दिलचस्पी थी। मगर हृदय के कोमल भावों की गहराई तक पहुंचने की न तो उसे शिक्षा ही मिली थी, और

न इस ओर उसकी रुचि ही थी।

देवदत्त ने चिट्ठी पढ़नी शुरू की। देवदत्त ज्यों-ज्यों चिट्ठी पढ़ता गया, त्यों-त्यों उसके हृदय की उत्सुकता का स्थान सन्देह को मिलता गया। चिट्ठी के इस भाग पर पहुंचकर तो उसके मन में ईर्ष्या का भाव पैदा हो गया—

'···मैं तुमसे आशा करती हूं कि तुम मेरी एक साध अवश्य पूरी करोगे। मुझे शीघ्र ही एक भाभी ला दो···चाहे वरकर, चाहे खरीदकर और चाहे छीनकर ही। लड़कियों को खरीदना और छीनना तो तुम पुरुषों के लिए एक मामूली बात है न ?··· भाई, विवाह ज़रूर कर लो। मैं भी तो पहले यही कहा करती थी कि जल्दी ब्याह न करूंगी, मगर यह तो किस्मत का खेल है।··· तुम सोचोगे, यह अपने आप तो बंध गई है, इसलिए मुझे भी बांधना चाहती है, मगर भैया, बात वैसी नहीं है।··· विवाह तो जुए का खेल है। मुझे जो कुछ मिलना था, वह तो मिल ही गया, अब यह देखने की इच्छा है कि तुम्हें क्या मिलता है···'

देवदत्त अभी आगे नहीं पढ़ पाया था कि स्नानागार के किवाड़ खोलकर प्रभा वहां आ खड़ी हुई। देवदत्त ने बड़ी शीघ्रता से चिट्ठी वहीं छोड़ दी। प्रभा इस समय भी बहुत प्रसन्न थी। बिखरे हुए और गीले केशपाशों में उसका चांद-सा मुंह अत्यधिक सुन्दर दिखाई दे रहा था। अपने पति की ओर देखकर वह बड़े निष्कपटभाव से मुस्कराई, परन्तु देवदत्त को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे यह सब दिखावा है !

भोजन के समय देवदत्त ने पूछा, 'यह इन्दु कौन है ?'

प्रभा अपने पति के इस रूखे-से प्रश्न का कुछ भी मतलब न समझ सकी। वह चकित होकर उनकी तरफ देखने लगी। देवदत्त को स्वयं भी अपना यह प्रश्न नितान्त असंगत-सा जान पड़ा, तथापि उसने अपना प्रश्न दुहराया, 'मैं उस इन्दु की बात पूछ रहा हूं जो तुम्हारे विवाह पर आया था।'

प्रभा ने जैसे देवदत्त को खिजाने के लिए जवाब दिया, 'वे लाहौर के

एफ० सी० कालेज के चतुर्थ वर्ष में पढ़ते हैं।'

देवदत्त ने अब जरा निर्लज्ज भाव से कहा, 'मेरा मतलब था कि वे तुम्हारे क्या लगते हैं ?'

प्रभा ने जरा तीव्रता के साथ कहा, 'क्या तुम यह बात सचमुच नहीं जानते ?'

देवदत्त ने देखा कि बात कुछ बनी नहीं, इसलिए वह टाल गया।

रक्षाबन्धन के दिन प्रभा को इन्दु की एक चिट्ठी मिली। प्रभा ने विस्मय से देखा कि यह चिट्ठी खुली हुई है। उसने अपने पति से इसका कारण पूछा। देवदत्त ने कैफियत दी, 'मैंने गलती से, पता देखे बिना, वह चिट्ठी खोल ली थी।'

प्रभा मानो सारी बात समझ गई। आवेश के कारण उसका मुंह कठोर बन गया। तो भी बड़े संयत भाव से उसने चुपचाप वह लिफाफा ले लिया। रक्षाबन्धन के दिन की सब उमंगें उसके दिल से गायब हो गईं। उसके कोमल हृदय को इस जरा-सी घटना से बड़ी ठेस पहुंची। उसकी आंखों में बलात् आंसू भर आए।

उसी सप्ताह के रविवार की बात है। देवदत्त की मिल में छुट्टी थी। छुट्टी का दिन वह अपने घर पर ही बिताया करता था। आज सख्त गरमी पड़ रही थी। सब लोग अपने-अपने घरों में बन्द हुए पड़े हुए थे। भोजन के बाद अनमनी-सी होकर प्रभा नीचे की मंजिलवाले शयनागार में बिस्तरे पर लेट गई। देवदत्त भी चुपचाप अपने बिस्तरे पर पड़ा था। पति-पत्नी में इन दो-तीन दिनों से खुलकर बातचीत नहीं हुई थी। कुछ देर के बाद देवदत्त ने पुकारा, 'प्रभा !'

कोई जवाब नहीं मिला। देवदत्त ने समझा कि प्रभा सो रही है। कुछ क्षणों तक उसकी तरफ एकटक दृष्टि से देखते रहने के उपरान्त वह चुपके से उठ खड़ा हुआ। तालियों का गुच्छा प्रभा के सिरहाने के नजदीक पड़ा था, देवदत्त ने धीरे से उसे उठा लिया, और इसके बाद

वह कमरे से बाहर चला गया।

देवदत्त सीढ़ियों पर से होकर प्रभा के कमरे में पहुंचा। वहां किसी भी तरह की आहट किए बिना उसने शीघ्रता से प्रभा का निजी बक्स खोल डाला। चमड़े के इस बक्स की जेब में प्रभा अपनी चिट्ठियां रखती है, यह बात देवदत्त को मालूम थी। कांपते हुए हाथों से उसने वे सब चिट्ठियां बाहर निकाल लीं और उन्हें देखना शुरू किया।

किस्मत की बात है। देवदत्त को चिट्ठियां पढ़ना शुरू किए अभी दो मिनट भी न बीते होंगे कि अचानक प्रभा वहां आ खड़ी हुई। अपने पति को चोरी से अपनी चिट्ठियों की जांच-पड़ताल करते देखकर क्रोध, दुःख और ग्लानि के मारे उसका चेहरा काला-सा पड़ गया। देवदत्त की ओर तीखी और चुभती हुई दृष्टि से देखकर उसने कहा, 'यह क्या हो रहा है?' उसकी आवाज़ आवेश के मारे कांप रही थी।

देवदत्त फक पड़ गया। वह रंगे हाथों पकड़ा गया था। तो भी हंसने का व्यर्थ प्रयास करते हुए उसने कहा, 'तुम तो सो गई थीं, इसलिए जी बहलाने की इच्छा से यहां आकर अपनी वे चिट्ठियां, जो मैंने तुम्हें भेजी थीं, पढ़ने बैठ गया।'

कितना सफेद झूठ था! प्रभा देख रही थी कि देवदत्त के हाथों में इन्दु की एक खुली चिट्ठी मोड़-तोड़कर रखी हुई है। उसने कहा, 'बस, रहने दीजिए। मैं सब समझती हूं। आप मुझे·····'

वह अपना वाक्य पूरा न कर सकी। बीच ही में रुलाई फूट पड़ी। नदी की बाढ़ ने किनारे का बांध तोड़ दिया। प्रभा सिसकियां भर-भरकर रोने लगी, जैसे उसका सर्वस्व लुट गया हो।

अगले ही दिन इन्दु को प्रभा की एक संक्षिप्त-सी चिट्ठी मिली, जिसने उसके जीवन का रुख ही बदल दिया। इस चिट्ठी में लिखा था—

'भाई इन्दु,

मुझे भविष्य में कभी भूलकर भी कुछ न लिखना। अच्छा हो, यदि तुम मुझे सदा के लिए भुला दो। भगवान की मर्ज़ी नहीं कि हमारा यह

सम्बन्ध बना रहे। हाय, यह दुनिया कितनी खोटी है !

मुझ अभागिनी को माफ करना।

तुम्हारी बहिन—
प्रभा....'

उपर्युक्त घटना को हुए आज पांच साल बीत चुके हैं। प्रभा और उसके पति की आपस में कैसी निभ रही है, यह तो हमें नहीं मालूम; परन्तु इन्दु के समाचार जरूर मालूम हैं। वह लद्दाख के बर्फीले, निर्जन और सुनसान पर्वतों में जंगलात का अफसर है। बी० ए० पास करके वह स्टेट-स्कालरशिप पर देहरादून चला गया था और दो साल वहां रहकर वह इस काम में लग गया था। हरे-भरे जंगल के एक सुन्दर बंगले में वह एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा है। उसने अभी तक विवाह नहीं किया।

दिन-रात काम में व्यस्त रहकर बाकी सारी दुनिया से जैसे इन्दु अपना नाता ही तोड़ डालना चाहता है। जीवन की कोमलता से ठोकर खाया हुआ यह नवयुवक सरकारी कामकाज की दृष्टि से अत्यधिक ख्याति प्राप्त कर रहा है; परन्तु वास्तव में वह बहुत ही करुणा, दया और सहानुभूति का पात्र है। उसके कोमल हृदय को आज से पांच साल पहले जो ठेस पहुंची थी, उसके तीक्ष्ण दर्द से वह अभी तक छुटकारा नहीं पा सका !

मेरा ख्याल था कि इस तरह की बचकानी भावुकता से छुटकारा पाने के लिए काल का थोड़ा-सा अन्तराल ही काफी होता है। पर प्रतीत होता है कि इन्दु एक अपवाद है। तंग आकर आज ही मैं उसे पत्र लिख रहा हूं कि पन्द्रह दिन का अवकाश लेकर वह मेरे व्यय पर पेरिस चला जाए। जो काम पांच वर्षों में नहीं हो पाया, वह वहां शायद पांच दिनों में हो जाएगा।

बदला

सम्राट बिन्दुसार के बड़े पुत्र युवराज सुमन बहुत ही शान्त प्रकृति के नवयुवक थे। बचपन से ही उनकी मनोवृत्ति वैरागियों के समान थी। इधर सुमन के छोटे भाई राजकुमार अशोक शुरू ही से जरा तेज़ तबीयत के थे। यही कारण था कि दोनों भाई एक दूसरे से कुछ खिचे-से रहते थे। सुमन अशोक को उथली तबीयत का समझता था और अशोक की निगाह में सुमन का जन्म परमेश्वर की गलती से ही राजघराने में हो गया था।

सम्राट बूढ़े हो गए थे। उन्हें पक्षाघात की बीमारी थी। इससे राज-काज युवराज सुमन के हाथों में ही था। अपने स्वभाव की मधुरता से युवराज सुमन ने प्रत्येक राजकर्मचारी का दिल मोह लिया था। उनकी देखरेख में सम्पूर्ण पाटलीपुत्र सुख की नींद सोता था। कहीं कोई अशान्ति नहीं थी। किसीको कोई शिकायत नहीं थी। सुमन को यदि कहीं से बाधा आती थी, तो वह अपने छोटे भाई अशोक की ओर से। अशोक की निगाह में सुमन की शान्त नीति से मौर्य-साम्राज्य के विमल यश पर कलंक का टीका लग रहा था। अशोक का कहना था कि यदि कुछ और बरसों तक मगध-साम्राज्य में वैरागियों की सी इस नीति का अनुसरण किया गया, तो हमारे दादा महान चन्द्रगुप्त मौर्य का विशाल साम्राज्य देखते-देखते छिन्न-भिन्न हो जाएगा। अपने इसी विश्वास के कारण अशोक सभी जगह युवराज सुमन की नीति का घोर विरोध करते थे। सभा में, मंत्री-परिषद् में, राजदरबार में—सभी जगह युवराज के लिए अपने इस उद्दण्ड छोटे भाई का मुंह बन्द करना कठिन हो जाता

था। आखिर तंग आकर सुमन ने अशोक को तक्षशिला का क्षत्रप बनाकर राजधानी से बाहर भेज दिया।

सुमन अब अपने महल में अकेले रह गए। अशोक के जाने के बाद से उन्हें अपना प्रासाद कुछ सूना-सा प्रतीत होने लगा। बचपन ही से दोनों भाई एकसाथ रहते हैं। अब, एक दूसरे से बहुत खिंच जाने पर भी, उन्हें बीसियों बार एक दूसरे के आमने-सामने होने का अवसर मिलता था। इसीसे सुमन को अब महल का अकेलापन अनुभव होने लगा। अपने रुग्ण पिता की देखभाल और राजकाज की व्यवस्था से उन्हें जो समय बचता था, उसे वे अपने राजप्रासाद में, गंगा के किनारे, संगमरमर के सफेद घाट पर बिताया करते थे।

युवराज सुमन की आयु तीस बरस के लगभग हो चुकी थी, परन्तु उन्होंने अभी तक विवाह नहीं किया था। सम्राट बिन्दुसार ने स्वयं अपने उत्तराधिकारी पुत्र युवराज सुमन से कितनी ही बार आग्रह किया कि वे विवाह कर लें, मंत्रियों ने प्रार्थना की और मित्रों ने दबाव डाला; पर नतीजा कुछ न निकला। सुमन विवाह करने को तैयार न हुए।

परन्तु होली के दिन अचानक एक ऐसी घटना हो गई, जिसने युवराज सुमन की वैराग्यपूर्ण मनोवृत्ति को एकदम बदल डाला।

पाटलीपुत्र के राजमहलों में होली का त्योहार उस वर्ष भी खूब उत्साह के साथ मनाया गया। नगर के कुलीन घरों की बीसियों कुमारियां अच्छे से अच्छे कपड़े पहनकर इस होलिकोत्सव में सम्मिलित हुईं। परन्तु राज-प्रासाद में इस वर्ष कोई रौनक नहीं थी। सम्राट बीमार थे। कुमार अशोक भी, जो अपनी अदम्य चंचलता के कारण होली में सम्मिलित होनेवाली सम्पूर्ण कुमारियों को जी भरकर खिलाया करते थे, इस साल बाहर गए हुए थे। राजपरिवार की महिलाओं में सम्राट की बीमारी के कारण कुछ उत्साह नहीं था। बाकी बचे, युवराज पर युवराज का होना न होना बराबर था। खेल-कूद और आमोद-प्रमोद में सुमन को कभी दिलचस्पी

हुई ही न थी। वे उन व्यक्तियों में थे, जिनके लिए जीवन एक ऐसी गम्भीर समस्या है, जिसमें हंसी, मज़ाक या आराम की गुंजाइश ही नहीं है।

तो भी होलिकोत्सव प्रारम्भ हुआ। युवराज के महल में थोड़ी देर के लिए जीवन का संचार हो गया। रंग और सुगन्ध की वर्षा आरम्भ हुई। हंसी का फव्वारा फूट पड़ा। युवराज को सभी कुमारियों ने मिलकर खूब परेशान किया। जब उनसे और कुछ न बन पड़ा, तो वे अपने महल से ही भाग खड़े हुए।

उत्सव का उत्साह शीघ्र ही ठण्डा पड़ गया। सभी कुलीन कुमारियां आज राजकुमार अशोक की अनुपस्थिति को बहुत अधिक अनुभव कर रही थीं। निस्सन्देह अशोक की उपस्थिति में युवराज को बेवकूफ बनाने में उन्हें और भी अधिक आनन्द आता था।

रंग-वर्षा समाप्त हुई। दुपहर के भोजन और संगीत के बाद अब अन्य खेलों की बारी आई। आंखमिचौनी, लुक्कन-छिप्पन, इसी तरह से और भी न जाने कितने ही हल्के खेल। ये सब खेल बंधी गत के समान होते रहे और सांझ होते न होते सभी लड़कियां अपने-अपने घरों में वापस चली गईं। हालांकि प्रतिवर्ष यह समारोह रात्रिभोज के साथ समाप्त हुआ करता था।

उधर युवराज सुमन अपने पुस्तकालय में छिपे बैठे थे। होलिकोत्सव का शोरगुल उन्हें यहां से भी भली प्रकार सुनाई पड़ रहा था। जब राजमहल में सन्नाटा छा गया, तब उनकी जान में जान आई, और वे अपने पुस्तकालय का दरवाजा खोलकर बाहर आए। अपने कमरे के पास, महल के आंगन में पहुंचकर उन्होंने उस सन्नाटे में जो दृश्य देखा, उससे उनका वैरागी हृदय भी कुछ देर के लिए प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने देखा, सामने गंगा नदी के दूसरे तट पर सूर्य अस्त हो रहा है, और उसकी अन्तिम किरणों से नदी का संपूर्ण विस्तृत वक्षस्थल भी लाल-लाल हो उठा है। इधर महल के आंगन का सफेद फर्श होली के

रंगों से इस तरह रंजित दिखाई दे रहा था, मानो वह शरद्-ऋतु की सांझ का, बादलों के छोटे-छोटे रंग-बिरंगे टुकड़ों से भरा आसमान हो। सुगंध और विशाल सौंदर्य के इस समन्वय ने युवराज के हृदय में एक विशेष प्रकार के उल्लास का संचार कर दिया।

उनके जी में आया कि चलो, ज़रा देखें तो सही कि लड़कियां उनके सामान के साथ क्या-क्या उत्पात कर रही हैं। युवराज अपने कमरों का चक्कर लगाने लगे।

परंतु जब वह अपने चित्रागार में पहुंचे, तो यह देखकर उनके विस्मय का ठिकाना न रहा कि उनकी शय्या पर एक युवती मज़े की नींद में सो रही है। युवराज को जैसे काठ मार गया। युवती का चेहरा इतना आकर्षक था कि एक बार उसपर दृष्टि पड़ जाने के बाद यह असंभव था कि आंखें उसे अच्छी तरह देख लेने के लिए आग्रह न करें। तो भी युवराज सुमन का दिल जैसे कांप-सा गया। वे बड़ी शीघ्रता से कमरे से बाहर निकलने लगे।

मगर युवराज का दुर्भाग्य। दुर्भाग्य क्यों, इसे शायद सौभाग्य ही कहना चाहिए। हड़बड़ाहट में शीघ्रता से बाहर निकलते हुए उनका पैर एक तिपाई से जा टकराया, और उस तिपाई पर पड़ा चांदी का बड़ा-सा फूलदान नीचे आ गिरा। परिणाम यह हुआ कि युवराज का चित्रागार एकसाथ अनेक अजीब-सी आवाज़ों से गूंज उठा।

फूलदान जब फ़र्श पर लुढ़का, तब उससे जो 'खन्न'-सी आवाज़ हुई, उसके साथ ही साथ युवराज के मुंह से अनायास ही निकला, 'ओह!'

इस आवाज़ की गूंज सुनाई दी युवती के आभूषणों में से। युवती की नींद उचट गई। उसकी सुन्दर कलाइयों को घेरकर जो निर्जीव आभूषण चुपचाप पड़े थे, वे भी बज उठे और इसके साथ ही उसके मुंह से भी एक घबराई-सी आवाज़ निकल गई।

युवराज सुमन इस समय तक दरवाज़े के निकट पहुंच चुके थे, मगर अब यह सोचकर कि किसी अपरिचित भद्र महिला को सोती हुई दशा में

देखकर उसके निकट से चोरों की तरह निकल भागना नितान्त असभ्यता है, वे धीरे-धीरे वापस लौटे। निकट आकर उन्होंने कहा, 'मुझे ज्ञात नहीं था कि इस कक्ष में आप विश्राम कर रही हैं।'

युवती अब तक संभलकर उठ बैठी थी। उसपर मानो घड़ों पानी पड़ गया। फिर भी अपने को संभालकर उसने कहा, 'क्षमा कीजिए। आज मेरा शरीर कुछ अस्वस्थ था, इसीसे....।'

वह बेचारी अपनी बात पूरी नहीं कर पाई थी कि बीच ही में युवराज ने कहा, 'यह तो नितान्त साधारण-सी बात है।'

युवती ने कहा, 'जी !'

युवती की असाधारण घबराहट देखकर युवराज ने कहा, 'कहिए, आपको कहां भिजवाने का प्रबंध कर दूं?'

युवती धीरे-धीरे दरवाज़े की ओर बढ़ रही थी। युवराज उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। वे दोनों चुपचाप बाहर चले आए। सूरज की अन्तिम किरणें युवती के चेहरे पर पड़ीं। युवराज ने देखा और अनुभव किया कि इतना सुन्दर, इतना भोला, इतना पवित्र और इतना आकर्षक चेहरा उन्होंने और कभी नहीं देखा।

धीरे-धीरे बातचीत से युवराज को यह मालूम हो गया कि युवती आज पहली बार अपनी सहेलियों के तीव्र अनुरोध से यहां आई थी। उसकी तबीयत कुछ खराब थी, अतः युवराज की बहिन उसे आराम करने के लिए इस कमरे में छोड़ गई थी। उधर उसकी सखियों ने समझा होगा कि वह पहले ही घर लौट गई है। उस एकान्त में शीघ्र ही गहरी नींद आ जाने का यह परिणाम हुआ था। इस कुमारी का नाम था शीला, और वह विक्रमशिला विश्वविद्यालय के आचार्य की एक मात्र पुत्री थी।

कुमारी शीला को उसके घर पहुंचा आने के लिए युवराज ने शीघ्र ही अपना रथ मंगवा भेजा। युवती जब चलने लगी, तो उसने बहुत ही मधुर स्वर में धीरे से सिर्फ इतना ही कहा, 'कष्ट के लिए धन्यवाद। मैं

आपकी हृदय से कृतज्ञ हूं।'

सुमन ने देखा कि कुमारी की बड़ी-बड़ी आंखें मानो सौंदर्य के बोझ से नीचे झुकी जा रही हैं।

युवराज सुमन कृतकृत्य हो गए। इस दुनिया में इतनी कोमलता और इतना सौंदर्य छिपा पड़ा है, इसका अनुभव युवराज सुमन को आज पहली बार हुआ।

युवराज के भाव-परिवर्तन की यह बात छिपी न रही। सम्राट की इच्छा से शीघ्र ही युवराज सुमन और कुमारी शीला की सगाई हो गई। यह निश्चय हो गया कि कुमारी शीला भारत-साम्राज्य की भावी सम्राज्ञी बनेगी। शीला पाटलीपुत्र का एक उज्ज्वल रत्न थी। उसके समान सुन्दरी और मधुरस्वभाव कन्या को अपनी भावी पुत्रवधू के रूप में पाकर सम्राट बिन्दुसार ने अपने को धन्य माना।

युवराज और शीला के विवाह की तिथि निश्चित हो चुकी थी; परंतु इसी बीच में एक भारी बाधा आ खड़ी हुई। सम्राट की बीमारी ने सहसा उग्र रूप धारण कर लिया और एक दिन सांझ को अचानक उनका देहान्त हो गया। पाटलीपुत्र को सम्राट के देहावसान का शोक मनाते हुए अभी एक सप्ताह भी न बीता था कि अचानक यह खबर मिली कि कुमार अशोक ने सीमाप्रान्त की सुशिक्षित सेना की सहायता से राजधानी पर चढ़ाई कर दी है।

इसके बाद घटनाओं की रफ्तार और भी अधिक तेज हो गई मानो वे दौड़ने लगी हों। नतीजा यह हुआ कि जिस सुमन को सम्राट बिन्दुसार भारत का सम्राट बना गए थे, वह तो चला गया जेल में, और जो राजकुमार एक समय राजधानी से निर्वासित-सा कर दिया गया था, वह अशोक बन बैठा भारत महासाम्राज्य के प्रबलप्रतापी मौर्यवंश का उत्तराधिकारी। दो सप्ताहों में ही ये सब घटनाएं हो गईं। जैसे एक विशाल समुद्र सूख गया हो और एक ऊंचा पहाड़ समुद्र बन गया हो।

सम्राट ने सुमन और शीला के विवाह की जो तिथि निश्चित की थी, उसके आने में अभी एक सप्ताह बाकी था। शीला को विश्वास था कि निश्चित मुहूर्त के आने पर अवश्य ही सुमन से उसका विवाह हो जाएगा। राज्य की इस छीना-झपटी का उसके विवाह के साथ संबंध भी क्या था ?

तथापि इन पिछले दो सप्ताहों की बात सोचकर शीला का दिल कांप जाता था। सम्राट की मृत्यु हुई, उसके बाद पाटलीपुत्र में घोर युद्ध हुआ। हज़ारों आदमी मारे गए और उसके बाद सुमन सम्राट से कैदी बना दिए गए। विवाह की तिथि में अब भी तो एक सप्ताह बाकी है। कौन कह सकता है कि इस एक सप्ताह में और क्या कुछ नहीं हो जाएगा।

विवाह के निश्चित मुहूर्त से सिर्फ दो दिन पहले शीला को समाचार मिला कि सम्राट अशोक अपने बड़े भाई सुमन की हत्या का निश्चय कर चुके हैं। शीला ने यह समाचार इस तरह सुना जैसे वह कोई सपना देख रही हो। उसे विश्वास ही न आया कि कभी भाई अपने भाई की हत्या कर सकता है।

तो भी उसके जी में आया कि वह अशोक के पास जाकर उसीसे इस समाचार की सत्यता के सम्बन्ध में जांच-पड़ताल करे।

निराभरण शीला सिर्फ एक सफेद धोती पहनकर सम्राट अशोक के सम्मुख उपस्थित हुई।

अशोक ने अपनी वाग्दत्ता भाभी के दर्शन आज तक कभी नहीं किए थे। इस अनिन्द्य सुन्दरी युवती ने आज अचानक उसके सामने आकर कहा, 'अशोक, परसों मैं तुम्हारी भाभी बनने जा रही हूं।'

अशोक सहम गया।

शीला ने पुनः कहा, 'अच्छा अशोक, तुम्हें इसमें कोई आपत्ति तो नहीं है न ?'

अशोक ने जैसे मन्त्रमुग्ध-सा होकर कहा, 'नहीं, मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है !'

शीला ने कहा, 'धन्यवाद ।'

वह लौटकर चल दी । अशोक अभी तक आश्चर्य में डूबकर इस भोली-भाली, परन्तु अदम्य साहसी नारी के अनुपम सौंदर्य की ओर देख ही रहा था कि शीला इस तरह पुनः लौटी, जैसे उसे कोई भूली बात याद आ गई हो । अब की बार पहले की अपेक्षा भी अधिक नज़दीक आकर उसने अशोक की आंखों में अपनी आंखें गड़ाकर बड़ी शान्ति के साथ कहा, 'अशोक, मैंने इधर-उधर से सुना था कि तुम अपने भाई की हत्या करना चाहते हो । मैंने तो पहले भी इस समाचार पर विश्वास नहीं किया था। भला, यह भी कभी सम्भव हो सकता है ?'

इतना कहकर शीला बहुत ही भोलेपन से जरा-सा मुस्कराई ।

अशोक कांप उठा । उसके माथे पर पसीना आ गया । चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं । तो भी अपने को संभालकर, लड़खड़ाती हुई आवाज़ में उसने सिर्फ इतना ही कहा, 'नहीं राजकुमारी, मैं इतना नीच नहीं हूं ।'

शीला ने ज़रा अपनेपन के साथ कहा, 'नहीं अशोक, मुझे राजकुमारी मत कहो, सिर्फ भाभी कहो । मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है ।'

अशोक के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। बीस वर्ष की इस भोली-भाली कुमारी ने भारत-विजेता सम्राट अशोक के सामने मानो उनकी क्रूरता और पाशविकता का नंगा चित्र खींच दिया हो । अशोक का पापी मन कांप उठा । ओह, वह इतना पतित कैसे हो गया !

अपने देवर को चुप देखकर शीला ने शासन के ढंग पर कहा, 'परसों विवाह में पुरोहित को छोड़कर सिर्फ तुम्हीं आने पाओगे। यह विवाह जेल में जो होगा । उसके बाद अगर तुम खुशी से अनुमति दोगे, तो हम दोनों कश्मीर चले जाएंगे, अन्यथा पाटलीपुत्र के बन्दीगृह का एक कमरा ही हम दोनों के लिए पर्याप्त होगा ।'

अशोक की आंखों से बरबस आंसू वह चले। उसके जी में आया कि वह अपनी कुटिलताओं के लिए अपनी भावी भाभी के चरणों पर सिर रखकर क्षमा-याचना करे। मगर वह ऐसा न कर सका। वह पत्थर की मूर्ति की तरह चुपचाप बैठा रहा। इस समय अशोक के मन में विभिन्न भावों की जो आंधी-सी उठी हुई थी, उसकी छाया उसके चेहरे पर साफ-साफ देखी जा सकती थी। मगर यह शीला का सौभाग्य था कि चलने के पूर्व उसने एक बार भी आंख उठाकर अशोक के चेहरे की ओर नहीं देखा।

शीला धीरे-धीरे वापस चली गई। कई मिनट तक अशोक चुपचाप एकटक दृष्टि से उसी ओर देखते रहे, जिस ओर से शीला बाहर गई थी। इसके बाद सेनापति के बुलाने पर सहसा वह इस तरह चौंके जैसे वे नींद से जगे हों। उस दिन फिर राजदरबार में और कोई काम नहीं हो सका। अशोक उठकर राजप्रासाद से उसी स्थान पर चले गए, जहां बैठकर युवराज सुमन गंगा नदी की लहरों का चढ़ाव-उतार देखा करते थे।

विवाह की रात, निश्चित समय से सिर्फ एक घण्टा पहले, शीला राजकीय कारागार के फाटक पर पहुंची। उसके साथ एक ब्राह्मण भी था। शीला के पास राजाज्ञा विद्यमान थी। पहरेदार ने दरवाजा खोलकर उन दोनों को अन्दर कर लिया।

कुमार सुमन ने जब शीला को अन्दर आते देखा, तो उनकी प्रसन्नता और विस्मय का ठिकाना न रहा। सुमन जैसे यह भूल ही गए थे कि आज की रात उनके विवाह की रात है। सच बात तो यह है कि पिताजी की मृत्यु के बाद, राजपाट से हाथ धोकर, जेलखाने में जीवन बिताते हुए वे यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि अब कभी शीला उन्हें मिल सकेगी। इस दशा में सहसा शीला को वरमाला हाथ में लिए अपनी ओर आते देखकर पहले तो उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास ही

न हुआ। उसके बाद वे इतने भावावेश में आ गए कि उनसे कुछ बोला भी न गया।

शीला आज बड़ी प्रसन्न थी। उसने मुस्कराकर सुमन की ओर देखा; परन्तु सुमन के मुरझाए हुए दुर्बल-से चेहरे की ओर देखकर उसका हृदय कांप गया। किसी भारी अनिष्ट की आशंका से उसके चेहरे पर पीलापन छा गया।

तो भी वह आगे बढ़ी, और अपने हाथ की वह 'वरमाला' उसने कुमार सुमन के गले में डाल दी।

पुरोहित ने आशीर्वाद देना चाहा; मगर अभी उसकी आवाज नहीं निकल पाई थी कि जेलखाने में तीन बधिकों के साथ एक आदमी ने प्रवेश किया। शीला दूर ही से पहचान गई कि यह कौन आदमी है। सहसा उसके मुंह से एक चीख निकली और वह बेहोश होकर गिर पड़ी।

इसके बाद शीला को कुछ भी मालूम नहीं कि कब क्या हो गया।

जब उसकी मूर्छा छूटी, तो उसने देखा कि कुमार सुमन का शव एक अर्थी पर रखा हुआ है, और वही ब्राह्मण देवता जो विवाह की विधि पूरी करवाने आए थे, कुछ दूरी पर घुटने टेके हाथ जोड़कर, बहुत ही डरे हुए स्वर में धीरे-धीरे गुनगुना रहे हैं—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !'

शव के पास एक तरफ तीनों वधिक खड़े थे और दूसरी ओर भारत के वर्तमान सम्राट् अशोक। शीला ने आंख उठाकर अपने इस दानव देवर की ओर देखा। वह पत्थर की मूर्ति की तरह चुपचाप खड़ा था, और उसकी आंखें सुमन के शव की ओर झुकी हुई थीं।

उक्त घटना को पूरे बारह साल बीत गए। यह उन दिनों की बात है, जब कलिंग का इतिहास-प्रसिद्ध भयंकर महायुद्ध प्रारम्भ हुए लगभग

दो वर्ष बीत चुके थे। सम्राट अशोक के इस भारी आक्रमण के फल-स्वरूप कलिंग भर में महामारी, अकाल और गरीबी का प्रकोप था। लोग भूखों मर रहे थे। लाखों आदमी मारे जा चुके थे। सब ओर हाहा-कार मचा था। दुनिया के सब रिश्ते, सदाचार की सम्पूर्ण मर्यादाएं और राज्य की पूरी व्यवस्था—इन सभी की लगभग समाप्ति हो चुकी थी। मनुष्य पतित होकर हिंसक पशु बन गया था।

कलिंग के इस महायुद्ध में क्रमशः नौबत यहां तक आ पहुंची कि दिन भर के हत्याकांड में जितने लोग ज़ख्मी होते या मरते थे, उनकी खोज-खबर लेना भी दोनों दलों में से किसीके लिए सम्भव नहीं रहा। ज़ख्मी लोग युद्ध-क्षेत्र में तड़प-तड़पकर जान दे देते थे और सुबह उन सब की लाशों को एकसाथ ज़मीन में गाड़ दिया जाता था।

इन्हीं दिनों कलिंग में एक विचित्र घटना रोज़ होने लगी। युद्ध में जितने भी लोग ज़ख्मी होते, उन्हें रात ही रात में सफेद कपड़े पहने हुए कुछ व्यक्ति—जिनका सिर मुंडा हुआ होता था—अपने साथ उठा ले जाते। सुबह सैनिकों को आश्चर्य होता कि रात के ज़ख्मी किधर चले गए।

दोनों सेनाओं के सैनिकों में अधिक संख्या सहजविश्वासी लोगों की थी। इन लोगों में शीघ्र ही यह प्रसिद्ध हो गया कि रात के समय प्रेतों की एक पूरी फौज युद्धक्षेत्र में आती है और ज़ख्मियों को सशरीर अपने साथ उठा ले जाती है। कलिंग के युद्धक्षेत्र में जितने लोगों की मृत्यु हुई थी, उनमें से अधिकांश का क्रियाकर्म तो किया ही नहीं जा सका था; इससे सैनिकों का यह विश्वास और भी अधिक पक्का हो गया कि ये सफेद वस्त्र-धारी मुण्डितशिर व्यक्ति कलिंग-युद्ध के मृत सैनिकों के प्रेत हैं। परिणाम यह हुआ कि रात होते ही दोनों दलों के सैनिक अपने-अपने कैम्पों में चले जाते थे।

थोड़े ही दिनों के बाद, दोनों सेनाओं में तब और भी अधिक भय का संचार हुआ, जब अनेक गुम हुए, आहत व्यक्ति भले-चंगे होकर सैनिकों

से पुनः आ मिले। इन लोगों की जबानी सम्राट अशोक और कलिंगराज की सेनाओं में यह किम्वदन्ती जोरों से प्रसिद्ध हो गई कि इस महायुद्ध की समाप्ति के लिए एक देवी ने अवतार लिया है, और रात के ये सम्पूर्ण चर उसी देवी के सेवक हैं। उनका कहना था कि वह देवी स्वयं अपने हाथों से घायलों की सेवा करती है; उसके हाथों में कोई ऐसा जादू है जिसकी बदौलत अधिकांश घायलों के घाव बहुत शीघ्र ठीक हो जाते हैं। घायलों को पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान कर वह देवी उनसे सिर्फ एक प्रतिज्ञा लेती है, और वह यह कि भविष्य में वे किसी युद्ध में सम्मिलित न होंगे।

शीघ्र ही वह देवी कलिंग भर में 'माता' के नाम से प्रसिद्ध हो गई, और उसके सम्बन्ध में विचित्र-विचित्र प्रकार की अलौकिक बातें सुनी जाने लगीं।

रात का समय था। गरमियों के दिन थे। आसमान से त्रयोदशी का चांद पृथ्वी पर सफेद चांदनी बरसा रहा था। दिन भर का कोलाहल इस समय तक समाप्त हो चुका था। इस सन्नाटे में खल्वाट सिरोंवाली अनेक श्वेतवस्त्रधारिणी नर-मूर्तियां चुपचाप अनेक जख्मियों को अपने शिविर में लाईं। एक श्वेतवस्त्रधारिणी देवी स्वयं अपने हाथों से इन जख्मियों की मरहम-पट्टी कर रही थी।

एक जख्मी के कपड़ों का बन्धन ढीला करते हुए उस देवी ने देखा कि आहत व्यक्ति के कपड़ों में से एक पत्र जमीन पर आ गिरा है। देवी ने चुपके से वह पत्र उठा लिया। आहत व्यक्ति कलिंगराज की सेना का कोई नायक प्रतीत होता था। चांद के उज्ज्वल प्रकाश में देवी ने उड़ती निगाह से इस पत्र की ओर देखा। उसके कौतूहल की कुछ सीमा न रही, जब उस पत्र के लेख में उसे सम्राट अशोक का नाम दिखाई दिया।

चिकित्सा का काम रुक गया। उल्का के प्रकाश में देवी ने उस पत्र को पढ़ना आरम्भ किया। सहसा उसके मुंह से एक हल्की-सी चीख निकल

गई। आसपास के सब लोग हैरान हो गए कि बात क्या है !

शिविर का सन्नाटा दूर हो गया। सब लोग शीघ्रता से उस देवी के पास चले आए। ये सब लोग बौद्धभिक्षु थे, और वह देवी उनकी संचालिका थी।

प्रधान बौद्धभिक्षु ने धीरे से पूछा, 'माता ! क्या आज्ञा है ?'

कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद माता ने ज़रा तीक्ष्ण-सी आवाज़ में कहा, 'मेरे लिए एक घोड़ा लाओ। मैं अभी युद्धक्षेत्र में जाऊंगी।'

माता अपने शिविर में चली गई, और कलम उठाकर एक पत्र लिखने लगी। इसी समय एक घोड़ा वहां ले आया गया, और उसपर सवार होकर माता युद्धक्षेत्र की ओर रवाना हो गई। उन्होंने अपने साथ एक भी व्यक्ति को नहीं लिया। सम्पूर्ण भिक्षुसंघ चकित था कि बात क्या है ! कलिंग सेना का वह आहत व्यक्ति भी अभी तक मूर्छित पड़ा था, इस कारण उससे भी कुछ पूछ लेना सम्भव नहीं था।

एक पहर बाद वह देवी युद्धभूमि में दिखाई दी। आज पहली बार वह स्वयं युद्धक्षेत्र में आई थी। उन्हें देखते ही सम्पूर्ण बौद्धभिक्षु उनके निकट आ गए। माता ने पूछा, 'सम्राट अशोक मौर्य का शिविर किस ओर है ?'

एक भिक्षु उन्हें अपने साथ-साथ सम्राट अशोक की सेना की ओर ले चला। सम्राट अशोक के शिविर के चारों ओर पहरा था। उनके निकट पहुंचकर माता ने अपने साथी को वापस लौट जाने की आज्ञा दी। वह भिक्षु बड़ी अनिच्छा और आशंका के साथ चुपचाप वापस लौट गया। माता ने अपना घोड़ा भी उसी बौद्धभिक्षु के साथ लौटा दिया।

माता चुपचाप आगे बढ़ी। उसके अलौकिक और गम्भीर चेहरे का तेजोमय सौंदर्य इस खिली चांदनी में मानो प्रस्फुटित हो रहा था। सम्राट के शरीर-रक्षकों की निगाह जब उसपर पड़ी, तो एक ने चिल्लाकर पूछा, 'कौन जा रहा है ?'

देवी ने आगे बढ़कर धीरे से कहा, 'मैं हूं कलिंग-युद्ध की माता।'

इस नाम में कुछ ऐसा जादू था कि सम्पूर्ण पहरेदार घुटने टेककर माता के सम्मुख बैठ गए। सबके सिर झुके हुए थे।

इसी समय माता ने आदेश के तौर पर कहा, 'सम्राट् अशोक को जगाकर कहो कि माता आई है।'

शीघ्र ही प्रधान शरीर-रक्षक शिविर के अन्दर चला गया। अभी तक माता ने एक सफेद कपड़े से अपना सारा शरीर ढक रखा था।

माता के सम्मुख पहुंचकर सम्राट अशोक ने घुटने टेककर उन्हें नमस्कार किया। इस नमस्कार का कुछ भी उत्तर न देकर माता ने कहा, 'इन सबसे कहो कि वे कुछ क्षणों के लिए चले जाएं।'

सम्राट के इशारा करते ही वहां सन्नाटा हो गया।

तब माता ने अशोक से प्रश्न किया, 'क्या तुम इस युद्ध में विजय प्राप्त करना चाहते हो ?'

अशोक ने सिर झुकाकर कहा, 'जी हां, माता !'

'तुम्हें कल ही विजय प्राप्त हो जाएगी।'

अशोक सिर झुकाए खड़े रहे।

माता ने कहा, 'देखो, एक आवश्यक बात है। मुझसे कोई प्रश्न मत करो और आज की शेष रात तुम अपने शिविर में मत सोओ। तुम्हारी जगह मैं यहां सोऊंगी। पर यह बात किसीको मालूम न होने पाए। तुम यह देखने का प्रयत्न भी न करना कि मैं वहां क्या कर रही हूं।'

सम्राट अशोक ने मन्त्रमुग्ध की सी दशा में कहा, 'जैसी आपकी आज्ञा माता !'

माता अन्दर जाकर अशोक के बिस्तरे पर लेट गई। अशोक ने ताली बजाई, और सम्पूर्ण शरीर-रक्षक तथा पहरेदार अपनी-अपनी जगह आ खड़े हुए। अशोक भी शिविर के अन्दर ही अन्दर से अपने वस्त्रागार में चले गए। उनकी आंखों में नींद नहीं थी। हृदय में असीम कौतूहल भरा था कि छिपकर देखूं कि माता क्या अनुष्ठान कर रही है; पर उनपर माता का इतना गहरा प्रभाव पड़ा था कि वे उसकी आज्ञा का भंग

कदापि नहीं कर सकते थे।

तीन बजे पहरेदारों की ड्यूटी बदलती थी, और इस समय सिर्फ एक ही बजा था। क्रमशः सभी काम यथापूर्व चलने लगा। जैसे कुछ हुआ ही न हो; पहरेदार भी चुपचाप मार्चिंग करने में लग गए। इस समय बातचीत करने की उन्हें आज्ञा न थी।

क्रमशः रात के तीन पहर बीत जाने का घण्टा बजा। पहरेदारों की ड्यूटी बदली, और इसके सिर्फ पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही सम्राट अशोक के शिविर में इतना शोरगुल मच गया कि सम्पूर्ण मागध-सेना में एक भी सैनिक सोता न बचा।

सचमुच एक भयंकर दुर्घटना हो गई थी। सबने आश्चर्य के साथ देखा कि सम्राट् अशोक के बिस्तरे पर एक महिला का सिर कटा पड़ा है और उसके पास ही खड़े हुए सम्राट बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहे हैं।

किसीकी समझ में न आया कि माजरा क्या है। इसी समय मागध-सेनापति को 'माता' के शव के निकट से एक पत्र प्राप्त हुआ। उन्होंने पढ़ा। इस पत्र पर लिखा था—

'प्रिय अशोक,

'इच्छा थी कि इसी तरह जीवन बिता दूं, और तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में, आज से बारह साल पहले, जो तीव्र प्रतिहिंसा के भाव उत्पन्न हुए थे, उन्हें भगवान बुद्ध की कृपा से सफलतापूर्वक दमन किए रहूं। परन्तु सहसा आज परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई कि मुझे तुम्हारे सम्पर्क में आना ही पड़ा।

'आज रात के सवा तीन बजे तुम्हारी हत्या कर डालने के लिए एक भयंकर षड्यन्त्र रचा गया था। मुझे जब इस षड्यंत्र के सम्बन्ध में ज्ञात हुआ, तब मेरे सामने सिर्फ तीन ही मार्ग खुले हुए थे। पहला तो यह कि तुम्हारी हत्या हो जाने दूं। दूसरा यह कि तुम्हें षड्यन्त्र की सूचना दे दूं; इस दशा में तुम स्वभावतः सतर्क रहते और उन सब षड्यन्त्रकारियों

की हत्या करवा डालते। तीसरा यह कि मैं स्वयं अपना जीवन देकर तुम्हारा और षड्यन्त्रकारियों का जीवन बचा लूं।

'मैंने इसी तीसरे मार्ग का अवलम्बन करने का निश्चय किया है, और इस तरह, हे मेरे देवर, मैंने तुमसे अपने पति की हत्या का बदला ले लिया है।

'अशोक, यह बौद्धों का बदला है।

'भगवान बुद्ध तुमपर कृपा करें। मेरा आशीर्वाद।

तुम्हारी भाभी—
शीला।'

और अगले ही दिन कलिंग-युद्ध सचमुच समाप्त हो गया।

शीघ्र ही सम्राट अशोक हत्यारे सम्राट से 'धर्मविजयी' और 'देवानां प्रिय' भारत-सम्राट् बन गए। और इस तरह अपनी भाभी शीला के प्रति किए गए अमानुषिक अपराध का थोड़ा-बहुत प्रायश्चित्त करने का उन्होंने आजीवन भरसक प्रयत्न किया।

सन्देह

दिल्ली में मशहूर था कि इन्दु का जन्म किसी वेश्या के गर्भ से हुआ है। उसके जन्म के सम्बन्ध में अनेक किम्वदन्तियां प्रचलित थीं। कुछ लोगों का कहना था कि दिल्ली की एक रूप-वैभव-सम्पन्ना वेश्या उसकी माता है और संयुक्तप्रान्त के एक ताल्लुकेदार उसके पिता। वेश्या होने पर भी तारा का उस ताल्लुकेदार से सच्चा प्रेम था, अतः उस प्रेम की स्मृति-रूप इस बालिका को वह अपने घृणित मार्ग पर नहीं चला सकी। अन्य लोगों का विश्वास था कि चावड़ी बाजार की वह वेश्या उसकी मां नहीं है, बल्कि वेश्यावृत्ति के लिए उसने इन्दु को कहीं से लाकर पाला-पोसा है और यह कि इन्दु कुलीन घराने की लड़की है। विशेष अवस्थाओं से बाधित होकर तारा वेश्यावृत्ति से एकदम विरक्त हो उठी, जिससे इन्दु को उसने पूर्ण संयम और सदाचार की शिक्षा दिलाई है। इसी प्रकार कुछ अन्य अफवाहें भी सुनी जाती थीं। इन्दु के जन्म के सम्बन्ध में चाहे कोई भी घटना सत्य हो, परन्तु इतना स्पष्ट था इन्दु अपने स्वभाव आदि की दृष्टि से किसी कुलीन कन्या से कम न थी। रूप-लावण्य में वह देवलोक की अप्सराओं का मुकाबला करती थी। उसकी आवाज वंशी की ध्वनि के समान मधुर और आकर्षक थी। उसका चरित्र सुवर्ण की तरह उज्ज्वल था। इतने पर भी सम्पूर्ण इन्द्रप्रस्थ नगरी में उससे प्रेम करनेवाला कोई न था। उसके रूप के प्यासे सहस्रों थे, उसका मधुर गान सुनने की चाह बूढ़ों तक को थी, परन्तु इन्दु को एक कुलीन बालिका के समान निष्कलंक समझकर उसे अर्धांगिनी बनाने का साहस सम्भवतः किसीमें न था।

वह आग की उस तेज ज्वाला के समान थी जो सर्दियों में हाथ सेंकने का काम तो दे सकती है, परन्तु निश्चिन्त होकर उसे घर में स्थान देने से सम्पूर्ण घर ही भस्म हो जाता है।

इन्दु बिलकुल अकेली थी। इस दुनिया में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसे वह अपना कह सके। सम्भवतः उसे भी किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा नहीं थी। अपने निर्वाह के लिए उसके पास काफी धन था, इसलिए उसे रहन-सहन के सम्बन्ध में कोई चिन्ता न करनी पड़ती थी। अपना समय काटने के लिए उसके पास बेल-बूटे काढ़ने की यथेष्ट सामग्री, कुछ चुने हुए उपन्यास और एक बढ़िया सितार थे। उसके लम्बे-चौड़े घर के सम्पूर्ण पर्दे और मेजपोश उसके अपने हाथ की कारीगरी का नमूना थे। दुपहर के बाद अपने मकान की चौथी मंजिल के एक बन्द कमरे में वह सितार के साथ घंटों कोयल की तरह कुहका करती थी। उसकी प्रसन्नता के लिए इतना ही काफी था, इसीमें उसे पूर्णता अनुभव होती थी। वह किसी व्यक्ति से बात करना भी पसन्द न करती थी। यहां तक की नौकरानियों से भी अधिक न बोलती थी। दुनिया उससे भय खाती थी, उसे शंकित होकर देखती थी और वह दुनिया से घृणा करती थी, उसे तुच्छ समझती थी। इन्दु के यौवन-काल के प्रारम्भिक दिन इसी प्रकार बीत रहे थे।

फरवरी मास का एक सायंकाल। सर्दियों की समाप्ति के दिन थे। एक हलका-सा अलवान ओढ़कर इन्दु अपने मकान की सबसे ऊंची छत पर खड़े होकर चांदनीचौक की ओर देख रही थी। आज किसी उच्चतम सरकारी कर्मचारी का जुलूस लालकिले से निकलकर चांदनीचौक से गुजर रहा था। इसके लिए बहुत दिनों से तैयारियां हो रही थीं। दिल्ली के जिस भाग से जुलूस गुजर रहा था, उसे खूब सजाया गया था। चांदनी चौक में जुलूस पहुंचने का समय साढ़े चार बजे था। इन्दु अपने ऊंचे मकान की छत से यहां दृश्य देखने का यत्न कर रही थी। उसके मकान से

चांदनीचौक कुछ दूर था, अतः उसका अधिकांश भाग उससे ओझल था। केवल गलियों के अन्तराल में से बाज़ार का कोई-कोई भाग ही वह देख पाती थी। पहले बहुत देर तक लोगों का कोलाहल सुनाई देता रहा। दूर से कभी-कभी फौजी गोरे घुड़सवार दिखाई पड़ जाते थे। शायद अभी तक जुलूस का प्रबन्ध ही हो रहा था। उसके बाद शोरगुल लगभग समाप्त हो गया। केवल घोड़ों की टापों की आवाज़ आती रही, अब शायद गोरे घुड़सवार सड़क के दोनों ओर पंक्ति बनाकर खड़े हो रहे थे। थोड़ी देर में सब ओर शांति व्याप्त हो गई। इस शान्ति में दूर पर बैण्डों की आवाज़ धीरे-धीरे अपनी ओर बढ़ती हुई सुनाई देने लगी। जुलूस आ पहुंचा। लोग थोड़ी-थोड़ी देर बाद जो तुमुल जयनाद करते थे, वह इन्दु के कानों तक पहुंच रहा था। उस समय उसे केवल जुलूस का शोर ही सुनाई दे रहा था और जुलूस मकान की ओट में होने के कारण उसकी दृष्टि से छिपा हुआ था। शीघ्र ही इन्दु अनमनी-सी होकर सुदूर क्षितिज की ओर देखने लगी। जुलूस की ओर से उसका ध्यान बिलकुल हट गया। दूर—जहां जमुना नदी के सूखे तट पर आकाश और भूमि मिल रहे थे, धुएं की एक क्षीण रेखा दिखाई दे रही थी, इन्दु उसीकी ओर देखने लगी।

थोड़ी ही देर में सहसा एक ऊंची आवाज़ सुनकर इन्दु इस प्रकार चौंकी जिस प्रकार कोई ऊंघता हुआ व्यक्ति अचानक ठण्डे पानी का छींटा खाकर चौंक उठता है। अपने सामने वाले मकानों की ओट में चांदनीचौक की सड़क पर से उसे तोप छूटने की सी ऊंची एक आवाज़ सुनाई दी। इसके साथ ही साथ उसे वहां से नीले रंग के धुएं का एक बड़ा-सा बादल उठता हुआ दिखाई दिया। दो-एक क्षण बाद ऊंची, चीखती हुई ध्वनि में 'पकड़ो, पकड़ो' की आवाज़ें आने लगीं। घोड़ों की टापों से प्रतीत होता था कि फौजी घुड़सवारों में भी कुछ हलचल-सी चल गई है। एकदम न जाने क्या उत्पात हो गया। इन्दु का हृदय कुछ शंकित-सा होकर अप्राकृतिक रूप में धड़कने लगा। वास्तविक घटना जानने के

लिए वह उत्कण्ठित हो उठी। इतना कौतूहल होते हुए भी अपने स्वभाव से लाचार होकर न तो वह घटनास्थल की ओर जा सकी और न किसी नौकरानी को बुलाकर ही इस घटना के सम्बन्ध में कुछ पूछ सकी। वह बहुत देर तक उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से सामने के मकानों की ओट में छिपे हुए चांदनीचौक की ओर देखती रही। पर्याप्त समय तक इसी प्रकार व्यर्थ रूप से ताकते रहने के बाद वह छत से उतरकर अपने मकान की चौथी मंजिल वाली बैठक में चली गई। जब इन्दु छत पर गई थी तब वह इस बैठक का दरवाजा खुला छोड़ गई थी, अब लौटकर उसने देखा कि दरवाज़ा बन्द है। तथापि इन्दु ने इसपर कुछ ध्यान न दिया, वह दरवाज़ा खोलकर अन्दर चली गई।

परन्तु अपनी मेज़ के पास पहुंचने तक इन्दु अपनी बाईं ओर के पर्दे को देखकर सहम गई। यह क्या है। साफ प्रतीत हो रहा था कि पर्दे की ओट में कोई व्यक्ति खड़ा है। पर्दे का मध्यभाग कुछ फूला हुआ था। पर्दे के नीचे नीले कालीन पर बादामी बूट पर्दे से बाहर निकले हुए दिखाई दे रहे थे। इन्दु यह कल्पनातीत दृश्य देखकर सहम गई। ये सब क्या अनहोनी घटनाएं हो रही हैं। वह दो-एक मिनट तक हतज्ञान-सी खड़ी-खड़ी उस पर्दे की ओर देखती रही। पर्दा अभी तक उसी प्रकार से स्थिर था। थोड़ी ही देर में इन्दु संभलकर अपनी किसी दासी को आवाज देने ही वाली थी कि पर्दा हट गया, उसके पीछे से एक सैनिक-वेशधारी युवक बाहर निकल आया और उसने बड़ी नम्रता से इन्दु को नमस्कार किया।

जब तक पर्देवाला व्यक्ति एक रहस्य था, इन्दु घबरा रही थी, परन्तु उस व्यक्ति के सामने आते ही उसकी घबराहट दूर हो गई। इन्दु ने जब से होश संभाला था, तब से किसी सभ्य पुरुष को उसने इतने समीप से और इतनी अच्छी तरह न देखा था। वह सैनिकवेशधारी व्यक्ति खूब गम्भीर होकर इन्दु के पैरों की ओर देख रहा था और इन्दु जिज्ञासापूर्ण कौतूहल के साथ उसके मुंह की ओर देख रही थी। थोड़ी देर के बाद इन्दु ने बड़ी नरम आवाज से पूछा, 'कौन हो तुम ?'

सैनिकवेशधारी व्यक्ति ने कुछ देर सोचकर धीरे से उत्तर दिया, 'खूनी।'

इन्दु को उस व्यक्ति का चेहरा खूनी के समान भयंकर प्रतीत नहीं हो रहा था, अतः उसने उसी तरह स्थिर और शान्त स्वर में पूछा, 'क्या मेरा खून करने आए हो ?

उस रहस्यमय व्यक्ति ने कांपती हुई आवाज में कहा, 'नहीं।'

इन्दु ने यह प्रश्न न कर कि तुम फिर यहां क्यों आए, उससे पूछा, 'तो तुम खूनी कैसे हुए ?'

उस व्यक्ति ने जवाब दिया, 'अभी मैं खून करके आ रहा हूं।'

'किसका ?'

'सरकार जिसका जुलूस निकाल रही थी।'

इन्दु कुछ स्तब्ध-सी हो गई। क्या यह आदमी अभी खून करके आ रहा है। इन्दु को यह एक पहेली-सी मालूम हुई। एक इतने सुन्दर और सौम्य चेहरे वाला व्यक्ति स्वयं कह रहा है कि मैं अभी-अभी खून करके आ रहा हूं। फिर खून भी एक ऐसे उच्च सरकारी अधिकारी का जिसे दोनों ओर से गोरी फौज ने घेर रखा था। इन्दु को यह बात बिलकुल असत्य-सी जान पड़ी। उसे कुछ सन्देह होने लगा कि कहीं यह व्यक्ति पागल तो नहीं है। परन्तु थोड़ी ही देर पहले छत पर से उसे एक जोर का धड़ाका सुनाई दिया था, और उसके बाद 'पकड़ो, पकड़ो' की आवाजें भी आई थीं। इस समय भी चांदनीचौक से काफी हल्ला यहां तक पहुंच रहा था। अतः उस व्यक्ति की बात को बिलकुल पागलपन कहकर भी नहीं टाला जा सकता था। कुछ देर तक इन्दु उस व्यक्ति की ओर विस्मय से देखती रही। उसने पूछा, 'खून किस प्रकार किया ?'

उस व्यक्ति ने कुछ विचलित स्वर में कहा, 'बम फेंककर।'

दो-एक क्षण चुप रहकर उसने स्वयं ही कहना शुरू किया, 'मैं आपका मकान कई वर्षों से जानता हूं। मुझे मालूम था कि आपके इस कमरे में आपको छोड़कर अन्य किसी व्यक्ति का प्रवेश नहीं है। अतः मुझे निश्चय

था कि यदि मैं बम फेंकते ही किसी प्रकार इस मकान में घुसकर शरण पा जाऊं, तो पुलिस मुझे हज़ार यत्न करके भी नहीं पकड़ पाएगी। यद्यपि आज तक मेरा आपसे कभी साक्षात् न हुआ था तथापि मुझे यह पूर्ण विश्वास था कि यदि आपके घर में घुसकर मैं आपसे शरण मांगूं तो आप इन्कार न करेंगी।' नवयुवक की दृष्टि अभी तक इन्दु के पैरों की ओर ही थी।

इन्दु को यह सम्पूर्ण घटना एक अचम्भा-सी प्रतीत हुई। यद्यपि अभी तक वह शेष संसार को हेय समझती थी, उसका जगत् उसी तक सीमित था, तथापि आज इस व्यक्ति को देखकर बाहर का जगत्, उसे उतना परित्याज्य न जान पड़ा। इस व्यक्ति को देखकर, उससे बात करके इन्दु को एक नये प्रकार के उल्लास का अनुभव हुआ। दो समान अनुभवशील हृदयों को परस्पर भाव-विनिमय करने में जो उल्लास प्राप्त होता है, वह इन्दु को आज जैसे पहली बार अनुभव हुआ। उसका हृदय नवयुवक के लिए सहानुभूति से भर उठा। परन्तु वह तो अपने को हत्यारा बता रहा है। इन्दु ने फिर पूछा, 'तुम यह हत्या का व्यवसाय क्यों करते हो?'

वह सैनिकवेशधारी व्यक्ति कुछ चकित-सा हो उठा। उसने सोचा, आश्चर्य है। इस अबोध नवयुवती को हमारे क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं है। अपने दल के सब सिद्धान्तों को एक ही वाक्य में रखते हुए उसने कहा, 'क्योंकि भारतवर्ष हमारा अपना देश है। यह जो दूसरी जाति के लोग उसपर शासन कर रहे हैं, लुटेरे हैं,—इनकी हत्या करने से ईश्वर प्रसन्न होगा।' अपने दल के सम्बन्ध की बात कहते हुए उसका स्वर आवेशपूर्ण हो उठा था।

इन्दु को यह उत्तर एक नवीन समस्या के समान जान पड़ा। उस नवयुवक के देशभक्तिपूर्ण भावों को वह उचित गम्भीरता से न ले सकी। नवयुवक कुछ कहते-कहते आवेश में आ गया है, यह देखकर इन्दु मुस्करा उठी। उसने प्रश्न किया, 'अच्छा, तुम्हारा नाम क्या है?'

नवयुवक ने उत्तर दिया, 'महेश।'

इन्दु ने कुछ मुस्कराकर बड़ी मीठी आवाज़ से फिर पूछा, 'अच्छा, खूनी साहब ! अब क्या सलाह है ?'

नवयुवक महेश ने पहली बार इन्दु की आंखों से आंखें मिलाकर बड़ी नम्रता से कहा, 'क्या आप आज के लिए मुझे अपने इस कमरे में आश्रय दे सकेंगी ?'

इन्दु ने शान्त स्वर में कहा, 'अवश्य ।'

महेश के शरीर में बिजली-सी घूम गई। उसे सूझ नहीं पड़ा कि वह और क्या कहे। इन्दु ने फिर कहा, 'हां, हां, तुम बड़ी खुशी से मेरे यहां ठहर सकते हो ।'

महेश अभी तक स्तम्भित-सा खड़ा था। शायद वह यही विचार रहा था कि यहां रहना श्रेयस्कर है या यहां से चला जाना। यहां से बाहर निकलने पर उसे पुलिस का भय था और यहां रहते हुए वह स्वयं अपने से डरने लगा था। महेश इसी उधेड़-बुन में था कि इन्दु ने उसे पासवाली आरामकुर्सी पर बैठने को कहा।

मनुष्य परिस्थितियों का दास है। वह खूब आगा-पीछा सोचकर किसी मार्ग पर चलता है, परन्तु परिस्थितियां उसे ज़बरदस्ती कहीं और बहा ले जाती हैं। महेश क्रान्तिकारी दल के मुखिया लोगों में था। सम्पूर्ण दल में वही सबसे अधिक साहसी व्यक्ति समझा जाता था। इसी-से उसे भारत-सरकार के उस उच्च अधिकारी का वध करने के लिए नियुक्त किया गया था। ठीक मौका पाकर उसने बम फेंका और बड़ी फुर्ती से पहले से तय की हुई स्कीम के अनुसार इन्दु की सबसे ऊंची मंजिल वाली बैठक में जा छिपा। वहां पहुंचकर वह पुलिस की नज़र से रक्षा पा गया। इन्दु का मकान चांदनीचौक से इतनी दूरी पर था कि पुलिस उसपर सन्देह ही न कर सकती थी। यहां तक तो सब ठीक था। परन्तु अब वह एक नई उलझन में पड़ गया। जिसे वह अब तक हेय अथवा उपेक्षणीय वेश्यापुत्री समझता था, वही इन्दु साक्षात् करने पर

उसे कुछ और ही जान पड़ी। वह क्रांतिकारी दल का सदस्य था, अतः उसकी दृष्टि में प्रारम्भ से ही यह संसार हिंसा, क्रूरता, अन्याय और अत्याचार का एक विशाल अजायबघर था। कोमलता, दया आदि गुणों को वह स्त्रैण समझकर पुरुष के लिए उन्हें कमज़ोरी समझता था। उसकी दृष्टि में स्त्रियां अभागिनी और दयनीय थीं, विशेषतः इन्दु को तो वह सर्वथा हेय और उपेक्षणीय समझता था। परन्तु आज इन्दु से मिलकर उसे ज्ञात हुआ कि इस संसार का सबसे अधिक रोचक पहलू बिलकुल अबोधता और सरलता में ही है। उसके सामने से मानो एक पर्दा उठ गया। पहले का वही कठोर, शुष्क और नीरस संसार महेश के सामने एक नये रूप में उपस्थित हुआ। इस नये परिवर्तन के बहाव में वह क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होते समय ली गई अपनी पवित्र प्रतिज्ञा को भी भूल गया।

पूरे दो दिनों तक इन्दु और महेश एकसाथ रहे। इन्हीं दो दिनों में उनमें परस्पर वह घनिष्ठ सम्बन्ध पैदा हो गया। जो बरसों तक एकसाथ रहने पर भी नहीं होता। इन दो ही दिनों में इन्दु का मानो काया-पलट हो गया। घर की सभी दासियां चकित थीं कि मालकिन को यह हो क्या गया। यद्यपि इन्दु ने महेश को गुप्त रखने का बहुत प्रयत्न किया था, तथापि उसकी प्रधान दासी नथिया से महेश की उपस्थिति छिपी न रह सकी। नथिया ने महेश की चर्चा अन्य दासियों में कर दी। इसी बात को लेकर उनमें कानाफूसी होने लगी, उन्होंने समझा कि मालकिन भी अब अपनी माता या पालिका तारा के मार्ग का अनुसरण करने जा रही हैं।

दो दिन बाद, रात के समय, महेश इन्दु से विदा लेकर गोरखपुर ज़िले में चला गया। जाते समय वह इन्दु को अपनी यादगार में अपने नाम की एक अंगूठी देता गया। इन्दु को उसने अपना गुप्त पता भी बता दिया। क्रांतिकारी दल के नियमानुसार महेश का यह कार्य एक अक्षम्य और मृत्युदण्ड के योग्य अपराध था।

महेश एक धूमकेतु के समान अचानक इन्दु के एकाकी निवासस्थान में प्रकट हुआ था, दो दिन ही रहकर वह सदा के लिए इन्दु के पास एक अमिट स्मृति छोड़ गया। यह स्मृति इन्दु के लिए सुखद थी या दुःखद, इसका निर्णय करना कठिन है। पर एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है, वह यह कि इस स्मृति का प्रभाव आग की एक तेज़ ज्वाला से कम नहीं था।

चरबी की पांच-सात बड़ी-बड़ी बत्तियां जलाकर एक तहखाने में उजेला कर क्रांतिकारी-दल के तेरह मुखियाओं की बैठक हो रही थी। जब कभी क्रांतिकारी-दल का कोई सदस्य असाधारण साहस का कोई कार्य करता था तब इसी स्थान पर मुखिया लोग उसके मुंह से सम्पूर्ण घटना सुना करते थे। आज महेश की बारी थी। वह दिल्ली में जिस उच्च राजकर्मचारी का खून करके आया था, उसकी हत्या का हाल सुनने को संपूर्ण मुखिया लोग उत्सुक हो रहे थे। आज से पूर्व क्रांतिकारी-दल किसी इतने उच्च अधिकारी की हत्या नहीं कर सका था, अतः आज मुखिया लोगों में असाधारण उत्साह था। यह रौद्ररूप तहखाना एक जंगल में था, अतः यहां बैठकर ये लोग निश्चिन्तता से हो-हल्ला किया करते थे। ऐसी सभाओं में सबसे पूर्व तेरहों मुखिया गीता हाथ में लेकर भारतमाता के नाम पर यह शपथ किया करते थे—'हम पिछली बैठक से लेकर आज तक बिलकुल पवित्र रहे हैं। संघ के किसी नियम का हमने उल्लंघन नहीं किया है।' आज सरपंच की अध्यक्षता में एक-एक करके सभी अन्य मुखियाओं ने बड़े उत्साह के साथ यह शपथ ली, परन्तु अन्त में जब महेश की शपथ लेने की बारी आई तब सब मुखियाओं ने आश्चर्य से देखा कि उसका स्वर लड़खड़ा रहा है। उन्होंने समझा कि शायद हत्या करने का पाप उसकी आत्मा को भयभीत कर रहा है।

सरपंच की आज्ञा पाकर महेश अपनी रामकहानी सुनाने को खड़ा

हुआ। जुलूस पर बम फेंककर वहां से भाग जाने तक की कथा तो उसने बिलकुल सत्य-सत्य कह सुनाई, परन्तु इसके बाद उसने कहना शुरू किया, 'अपने फौजी वेश की सहायता से मैं चांदनीचौक को चीरता हुआ लालकिले की ओर चल दिया। इस समय सब ओर सनसनी फैल चुकी थी। लोग 'पकड़ो, पकड़ो' चिल्ला रहे थे और मैं आराम के साथ चांदनीचौक के ठीक बीच से लालकिले की ओर बढ़ा चला जा रहा था...'

इसपर सभी मुखिया जोर से हंस पड़े। सरपंच ने कहा, 'पुलिस कितनी बेवकूफ है!'

महेश ने फिर कहना शुरू किया, 'अच्छा, तो आराम से चलते हुए मैं लालकिले के नजदीक जा पहुंचा। उधर फौज के घुड़सवारों ने चांदनीचौक के सम्पूर्ण मकानों को घेर लिया था। मैं लालकिले के पास पहुंचकर बाईं ओर, रेलवे लाइन की तरफ मुड़ने ही वाला था कि किले में से लगभग डेढ़ सौ गोरे सिपाही बन्दूकें हाथ में लिए बाहर निकले। शायद ये लोग भी शोरगुल सुनकर ही बाहर आए थे। मैं एक क्षण के लिए तो बिलकुल घबरा गया, परन्तु दूसरे ही क्षण संभलकर मैंने ऊंची आवाज में अंग्रेजी में कहा—चलो, चलो, सेनापति का खून हो गया है! यह सुनते ही सभी गोरे बिना 'फाल-इन' किए चांदनीचौक की ओर दौड़ पड़े।'

इसपर फिर कहकहा पड़ा।

मालूम होता है कि महेश अपनी शेष कहानी एक ही वाक्य में समाप्त कर डालना चाहता था, अतः उसने बिना ठहरे ही कहा, 'हां, तो उन लोगों को चांदनीचौक की ओर भागते देखकर मैंने दो-एक क्षण तो खूब प्रसन्नता अनुभव की। पर थोड़ी ही देर में मुझे फिर अपने बचाव की चिन्ता ने आ घेरा। इसी समय मुझे दिखाई दिया कि किले के पास की सूखी खाई में शराब का एक पुराना लकड़ी का पीपा पड़ा है। मैं धीरे-धीरे गढ़े में उतरकर उसी खोल में घुस गया। यह बात बहुत अच्छी हुई, क्योंकि थोड़ी ही देर में मुझे फौजी घुड़सवारों के एक दल के उधर ही आने की

आवाज़ सुनाई दी। बस, मैं दो दिन तक उसी शराब के पीपे में दम साध-कर पड़ा रहा।'

इसपर सभी मुखियाओं ने जयध्वनि की। सरपंच ने कहा, 'बड़े साहस का काम है।'

क्रांतिकारी-दल में अपने सरपंच के मुंह से साधुवाद पाना सबसे बड़ा सम्मान समझा जाता था, परन्तु महेश सरपंच के मुंह से यह साधु-वाद सुनकर पुलकित नहीं हुआ, उसका मुंह पीला पड़ गया। उसने कांपती हुई आवाज़ में फिर कहना शुरू किया, 'दो दिन बाद रात के समय मैं उस पीपे से बाहर निकलकर इस प्रान्त में चला आया। बस, यही मेरी आत्मकहानी है।'

इसके बाद महेश को सहकारी सरपंच की उपाधि दी गई।

उन दो दिनों के बाद फिर इन्दु महेश से मिल नहीं सकी। इन्हीं दो दिनों में इन्दु के लिए यह संसार एक नया रूप धारण कर चुका था। यद्यपि महेश स्वयं फिर कभी उससे मिलने नहीं आ सका, फिर भी उसके प्रणय-पत्र इन्दु को समय-समय पर अवश्य प्राप्त होते रहे। महेश का पत्र देने का तरीका साधारण न होकर विशेष हुआ करता था। ये पत्र प्रायः किसी चीज़ के रजिस्टर्ड पार्सल में ही आया करते थे। इन्दु भी इसी प्रकार के किसी अन्य साधन द्वारा उन पत्रों का उत्तर दिया करती थी।

परन्तु बाद में महेश के पत्र आने सर्वथा बन्द हो गए। इन्दु प्रति-दिन उन विशेष लेबलवाले पार्सलों की प्रतीक्षा घण्टों तक किया करती थी, परन्तु डाक में उसे वे पार्सल कभी प्राप्त न होते थे। संकोचवश वह कभी डाकिये से पूछ भी न सकती थी। महेश के पत्र न मिलने के कारण वह सोचती थी कि कहीं महेश किसी आपत्ति में तो नहीं फंस गया। महेश के पिछले भयंकर कारनामों का ख़याल करते ही उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे।

महेश क्रांतिकारी दल का सदस्य था। अनेक वर्षों से वह जिस

मार्ग को दुर्बलता का मार्ग समझता था, आज भाग्यवश वह स्वयं उसी मार्ग का राही बन गया था, परन्तु अवस्थाओं के प्रभाव से उसकी यह दशा बहुत दिनों तक कायम न रह सकी। इस नये नशे का प्रभाव उसके प्राचीन, वर्षों के अनुशीलन के बाद स्थिर किए विचारों की टक्कर न ले सका। जिस प्रकार रबर की गेंद पक्की चट्टान पर ठोकर खाकर फिर उतने ही वेग से ऊपर को उठती है, उसी प्रकार महेश का हृदय इन्दु से कुछ विरक्त-सा होने लगा। पिछले दिनों उसके जीवन में बड़ी-बड़ी घटनाएं हुई थीं। वह अपने महान कार्य में सफल हुआ था। अपने दल में उसकी इज्जत बढ़ गई थी। सरपंच उसपर फिदा था। सम्पूर्ण अन्य मुखिया भी उसकी धाक मान गए थे। यह सब कुछ था, परन्तु उसके अपने हृदय में अपना मान पहले की अपेक्षा घट गया था। वह सोचता था कि मैं अचानक ही अपनी महान और पवित्र प्रतिज्ञा को भंग कर बैठा। सबसे बढ़कर उसके हृदय को यह बात व्यथित कर रही थी कि वह गीता हाथ में लेकर, अपनी दुखिया जन्मभूमि की शपथ खाकर, स्वयं सरपंच-परमेश्वर के सम्मुख रहते हुए भी झूठ बोला। इन्दु की याद आते ही ये सब बातें स्वयं उसके ध्यान में आ जाती थीं। शायद इसी कारण उसने इन्दु से पत्र-व्यवहार बन्द कर दिया हो।

यह भी बहुत सम्भव है कि महेश के इस प्रकार सहसा पत्र-व्यवहार बन्द कर देने का कारण उसके हृदय की उक्त प्रतिक्रिया न होकर कोई और अस्थिर बाधा हो।

जुलूस पर बम फेंकने के मामले का अन्वेषण खुफिया पुलिस बड़ी मुस्तैदी से कर रही थी। सम्पूर्ण भारत-साम्राज्य की पुलिस के नामी-नामी कार्यकर्ता दिल्ली बुला लिए गए थे। बड़ी तत्परता से खोज की जा रही थी। दिल्ली और उसके आसपास के इलाके से लगभग तीन सौ नवयुवक सन्देह में गिरफ्तार कर लिए गए। पुलिस ने खूब हाथ साफ किए थे। मजा तो यह था कि पुलिस ने दिल्ली के ग्यारह घरों में से बम बनाने का

सामान भी बरामद कर लिया था। लोगों की नाक में दम आ गया था।

खुफिया पुलिस इतनी मुस्तैदी दिखा रही थी, परन्तु उसके मुख्य अध्यक्ष मि० विलियम फिच और उनके सहायक मि० बोस पुलिस के इन कारनामों से खुश न थे। मि० बोस तो पुलिस पर बेतरह खफा थे। उनका विचार था कि पुलिस के ये पाजीपने के कार्य जनता में व्यर्थ का त्रास फैला रहे हैं, जिससे हमारे वास्तविक काम में बाधा पहुंच रही है। फिच साहब का वास्तविक मत तो यही था, पर वे उस दिन की बम-दुर्घटना से इतने सख्त नाराज थे कि क्रान्तिकारियों का बदला जनता से ले रहे थे। धोबी का क्रोध अपने गधे पर निकल रहा था। उनका खयाल था कि आखिर क्रांतिकारी लोग पैदा तो इसी कम्बख्त जनता से ही होते हैं न।

उन दिनों भारत की सम्पूर्ण खुफिया-पुलिस में सबसे अधिक कार्य-कुशल व्यक्ति मि० बोस ही थे। मि० बोस का वैयक्तिक सहायक कृष्णकान्त नाम का एक व्यक्ति था। उसकी जन्मभूमि संयुक्तप्रान्त में ही थी। वह बड़ा ही हंसमुख, बातूनी और कार्यकुशल था। पहले वह एक नाटक-कम्पनी में मखौलिये का कार्य किया करता था, परन्तु उसकी उपयोगिता पहचानकर मि० बोस ने एक ऊंची तनख्वाह पर उसे अपना वैयक्तिक सहायक बना लिया था। किसीसे घनिष्ठता स्थापित कर लेना उसके लिए बायें हाथ का खेल था। उसका स्वरूप बहुत लुभावना था, अतः उसपर सरलता से कोई सन्देह न कर सकता था। कृष्णकान्त भले आदमी का वेश धारण करके दिल्ली में टोह लेने लगा, कभी वह ब्राह्मण का वेश बनाता, कभी व्यापारी का और कभी शौकीन बाबुओं का। मि० बोस स्वयं भिखारी का वेश बनाकर दिल्ली की गलियों में घूमने लगे। कृष्णकान्त अपने दिन भर के भ्रमण का वृत्तान्त मि० बोस को सुना दिया करता था।

एक दिन कृष्णकान्त द्वारा मि० बोस को ज्ञात हुआ कि जिस दिन जुलूस पर बम फेंका गया था, उसी दिन इन्दु नाम की एक वेश्यापुत्री

के पास एक सुन्दर-सा नवयुवक आकर ठहरा था। दो दिन तक इन्दु के पास रहकर वह न जाने कहां चला गया। मि० बोस ने आश्चर्यान्वित-सा होकर पूछा, 'कौन इन्दु ?'

कृष्णाकान्त ने इन्दु का ठीक-ठीक पता बता दिया। मि० बोस इन्दु के जीवन से भली भांति परिचित थे। उसकी पालिका तारा से उनकी अच्छी घनिष्ठता थी, परन्तु यह बात उन्होंने कृष्णाकान्त तक भी प्रकट न होने दी। अनुभवी खुफिया मि० बोस के चेहरे पर आशा की एक रेखा दौड़ गई।

अगले ही दिन वह भिखारी के वेश में इन्दु के घर के समीप पहुंचे। इन्दु उस समय एक खिड़की के नजदीक बैठी बड़े चिन्ताकुल रूप में किसी चीज़ की ओर एकटक निहार रही थी। मि० बोस आज से दो-एक वर्ष पूर्व भी उसे देख चुके थे। उनकी तेज़ दृष्टि ने शीघ्र ही पहचान लिया कि आज की इन्दु पहले की इन्दु नहीं है। वह गली में धीरे-धीरे टहलते हुए कुछ देर तक किसी समस्या पर विचार करते रहे।

एक सप्ताह बाद ही इन्दु के हाथ से वह अंगूठी खो गई जो महेश उसे अपनी स्मृति के रूप में दे गया था। घर की एक दासी की सहायता से वह अंगूठी मि० बोस के हाथ में पहुंची। उन्होंने देखा कि उसपर 'महेश-चन्द्र' नाम अंकित है। मि० बोस ने अपनी प्राइवेट नोटबुक के पन्ने उलटकर देखा तो उन्हें किसी प्राचीन घटना के नीचे अन्य बहुत-से नामों के साथ 'महेशचन्द्र' नाम भी प्राप्त हुआ। नोटबुक में महेशचन्द्र के लिए चार विशेषण अंकित थे—नवयुवक, साहसी, सुन्दर, क्रान्तिवादी। मि० बोस का हृदय बल्लियों उछलने लगा। उनके दिल में विश्वास बैठ गया कि हो न हो, इस बम दुर्घटना में इस महेशचन्द्र का हाथ अवश्य है।

परन्तु इस महेशचन्द्र का पता किस प्रकार मालूम किया जाए ? मि० बोस बड़ी गम्भीरता से दो-तीन दिनों तक इसी समस्या पर विचार करते रहे। वे इन्दु को भली भांति जानते थे। इन्दु की पालिका तारा से भी

उनका अच्छा परिचय था। शायद मि० बोस ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे, जो इन्दु के जन्म की वास्तविकता से अवगत थे। यही कारण था कि वे उसे साधारण बालिका नहीं समझते थे। मि० बोस का खयाल था कि इन्दु आजीवन अकेली रहकर अपनी आयु बिता देगी, परन्तु उनका यह विचार ठीक सिद्ध न हुआ। इन्दु ने प्रेम किया और बिलकुल अचानक, बिना किसी पूर्व-परिचय के, प्रेम किया। दो दिन ही उसके पास रहकर उसका प्रेमी चला गया। अब न जाने वह लौटेगा या नहीं। भाग्यवश इन्दु ने एक ऐसे व्यक्ति से प्रेम किया जिसका भूत भयंकर था और भविष्य सन्दिग्ध। परन्तु मि० बोस को यह पूर्ण विश्वास था कि चाहे जो हो, इन्दु अब इस जीवन में अपने प्रणयी को भुला न सकेगी।

तीन दिन तक मि० बोस बड़ी गम्भीरता से इसी समस्या पर विचार करते रहे कि इन्दु से महेश का पता-ठिकाना किस तरह प्राप्त किया जाए। अन्त में उन्हें एक उपाय सूझ ही गया। सच्चे प्रेम को परास्त करने के लिए उन्होंने एक बड़े ही अमानुषिक उपाय का अवलम्बन किया।

२५ हजार रुपया इनाम

गत २६ फरवरी को चांदनीचौक में '......' की हत्या कर महेशचन्द्र नामक एक व्यक्ति कहीं लापता हो गया है। इस व्यक्ति का रंग सफेद, चेहरा गोल, आंखें बड़ी-बड़ी, कद लम्बा और शरीर गठा हुआ है। देखने में एक सुन्दर नौजवान प्रतीत होता है। यह व्यक्ति इलाहाबाद में सन्देहपूर्ण चरित्र की एक सुन्दरी के यहां पकड़ा ही जानेवाला था कि अचानक भाग निकला। तीन दिन से वह स्त्री भी गुम है, सम्भवतः उसीके पास पहुंच गई है। उसके बायें हाथ की कलाई पर उर्दू में 'रहमतुन्निसा' नाम खुदा हुआ है। कुछ महीनों से इन दोनों व्यक्तियों में परस्पर अनुचित सम्बन्ध है। जो व्यक्ति महेशचन्द्र को जीवित पकड़वा देगा या उसका पता बताएगा,

उसे पच्चीस हज़ार रुपया इनाम दिया जाएगा। रहमतुन्निसा को पकड़ने-वाले व्यक्ति को पांच हज़ार रुपया इनाम दिया जाएगा।

—सिटी मजिस्ट्रेट की आज्ञा से

पूर्वोक्त घटना के दो दिन बाद दिल्ली के प्रत्येक बाज़ार और मुख्य-मुख्य गलियों में जगह-जगह दिल्ली के सिटी मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षरों से लाल रंग के बड़े-बड़े पोस्टर चिपके हुए पाए गए। इन्दु के घर के दरवाज़े के ठीक सामने भी ऊपर दिया हुआ एक पोस्टर चिपका हुआ था।

दुपहर के समय भोजन के बाद इन्दु अनमनी-सी होकर बाहर की ओर देख रही थी कि अचानक उसकी नज़र सामने के लाल पोस्टर पर पड़ी। पोस्टर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था, अतः वह उसे वहीं बैठे-बैठे पढ़ने लगी। उफ, यह क्या ! इन्दु पर यदि अचानक कोई तलवार का वार करता तो भी वह इतनी स्तम्भित और भयभीत न होती जितना वह पोस्टर को पढ़कर हुई। वह पोस्टर क्या पढ़ रही थी मानो हालाहल विष का प्याला पी रही थी। सारा पोस्टर पढ़ जाने पर भी उसे अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ। क्या यह स्वप्न है ? इन्दु फिर से पढ़ने लगी। उसके सर्वनाश का मूर्तिमान प्रमाणपत्र उसी प्रकार निश्चल होकर चिपका हुआ था। एकाएक यह क्या हो गया ? इन्दु पोस्टर को दुबारा समाप्त न कर सकी, एक हलकी-सी चीत्कार के साथ वह मूर्छित हो गई। उसके प्रेमी हृदय की रग-रग में सन्देह का हालाहल विष व्याप्त हो गया। मालूम होता है, उसका दिल टूट गया था।

इन्दु के मूर्छित होते ही उसकी दासियों ने आकर उसे घेर लिया। इन्दु बेहोशी में ही बड़बड़ाने लगी, 'हाय ! इतना विश्वासघात ?······ मनुष्य इतना विश्वासघाती ! कल्पनातीत।' इसी प्रकार वह बहुत-सी असंगत बातें बड़बड़ाने लगी। बड़बड़ाहट में वह महेश का पता भी बोल गई।

मि० बोस का विचार था कि सन्देह के विष द्वारा प्रेम का प्रभाव

नष्ट करके वह इन्दु से उसका पता पूछ लेंगे। परन्तु यह मात्रा से अधिक दे दिया गया था। मि० बोस को इन्दु से स्वयं बात करने की आवश्यकता भी न पड़ी।

इस घटना के एक मास बाद ही समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ कि महेशचन्द्र नाम का एक क्रान्तिकारी अपने छः सहायकों के साथ गोरखपुर जिले में गिरफ्तार हुआ है।

◇ ◇ ◇